HAL open science

किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन (महिषासुर: एक पुर्नपाठ)

Pramod Ranjan, Premkumar Mani, Ashwini Kumar Pankaj, Dilip Mandal, Jitendra Yadav, Samar Anarya, Arun Kumar, Shibu Soren

▶ **To cite this version:**

Pramod Ranjan (Dir.). किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन (महिषासुर: एक पुर्नपाठ). 2013, ⟨10.17613/410m-0r90⟩. ⟨hal-03965994⟩

HAL Id: hal-03965994

https://hal.science/hal-03965994

Submitted on 31 Jan 2023

HAL is a multi-disciplinary open access archive for the deposit and dissemination of scientific research documents, whether they are published or not. The documents may come from teaching and research institutions in France or abroad, or from public or private research centers.

L'archive ouverte pluridisciplinaire **HAL**, est destinée au dépôt et à la diffusion de documents scientifiques de niveau recherche, publiés ou non, émanant des établissements d'enseignement et de recherche français ou étrangers, des laboratoires publics ou privés.

Distributed under a Creative Commons Attribution - NonCommercial 4.0 International License

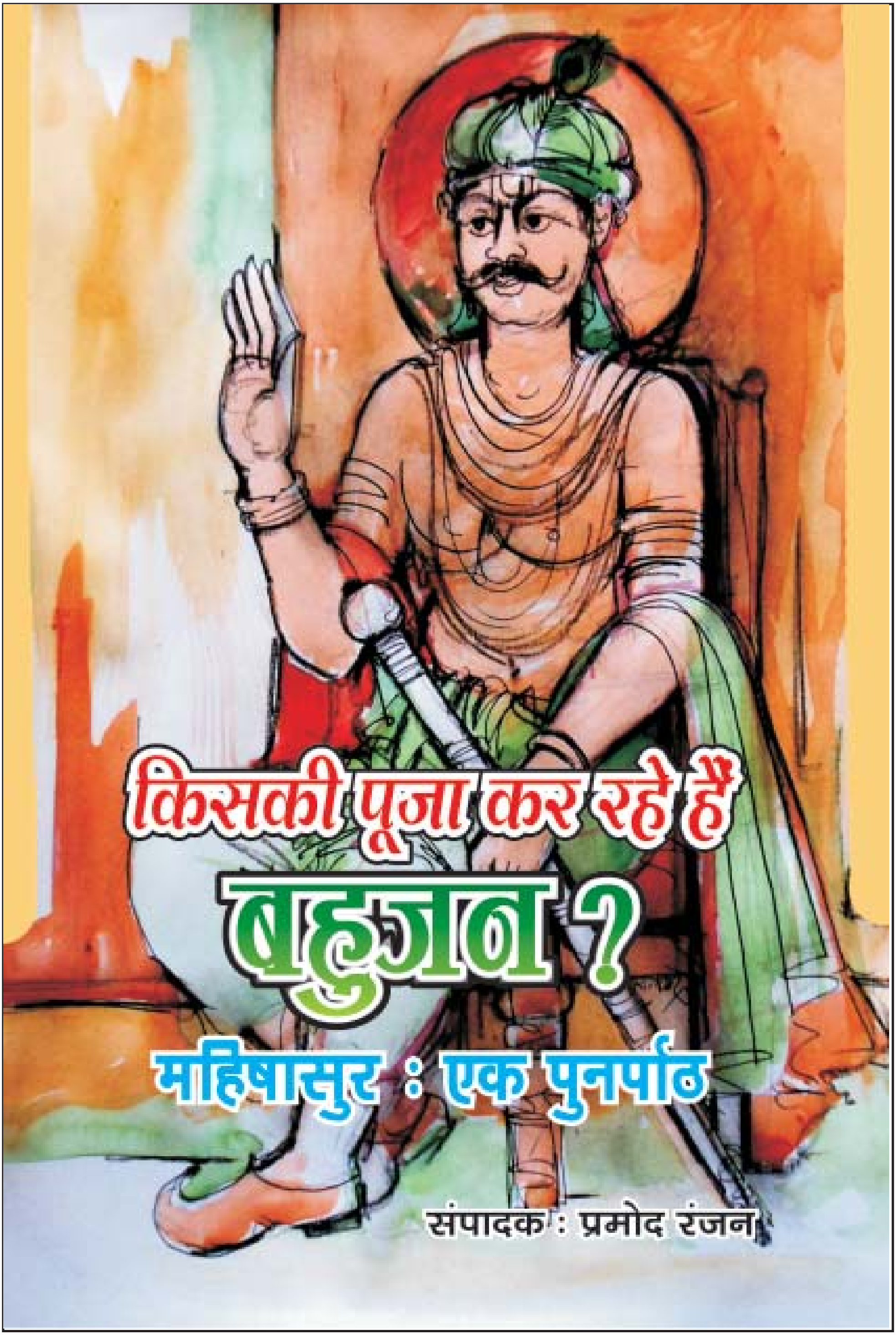
किसकी पूजा कर रहे हैं
बहुजन ?
महिषासुर : एक पुनर्पाठ
संपादक : प्रमोद रंजन

किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन?
महिषासुर : एक पुनर्पाठ

संपादक
प्रमोद रंजन

बलिजन कल्चरल मूवमेंट

किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन?
महिषासुर : एक पुनर्पाठ

संपादक : प्रमोद रंजन

17 अक्टूबर, 2013 को जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में आयोजित 'महिषासुर शहादत दिवस' पर जारी.

संपर्क : ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंटस फोरम, जेएनयू.
मो. : 097716839326, 09430083588

मूल्य : 30 रूपये
मुद्रक : क्विक ऑफसेट, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032

विषय सूची

संपादकीय		4
किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन?	*-प्रेमकुमार मणि*	6
देखो मुझे, महाप्रतापी महिषासुर की वंशज हूं मैं	*-अश्विनी कुमार पंकज*	10
धार्मिक ग्रंथों का पुनर्पाठ : कबीर, फुले, आंबेडकर और पेरियार की परंपरा	*-दिलीप मंडल*	14
महिषासुर यादव वंश के राजा थे	*-चंद्रभूषण सिंह यादव*	19
महिषासुर का सच	*-जितेंद्र यादव*	25
महिषासुर : मुक्ति के महाआख्यान की वापसी	*-समर अनार्य*	28
दुर्गासप्तशी का असुर पाठ : एक सांस्कृतिक युद्ध की घोषणा	*-अश्विनी कुमार पंकज*	32
ब्राह्मणवादी संस्कृति के प्रतिकार का बढ़ता कारवां	*-अरुण कुमार*	37
असुर होने पर मुझे गर्व है	*-शिबू सोरेन*	40

परिशिष्ठ

कुछ प्रेस नोट्स, पत्र और अखबार कतरनें	41

संपादकीय

एक सांस्कृतिक युद्ध

–प्रमोद रंजन

महिषासुर के नाम से शुरू हुआ यह आंदोलन क्या है? इसकी आवश्यकता क्या है? इसके निहितार्थ क्या हैं? यह कुछ सवाल हैं, जो बाहर से हमारी तरफ उछाले जाएंगे. लेकिन इसी कड़ी में एक बेहद महत्वपूर्ण सवाल होगा, जो हमें खुद से पूछना होगा कि हम इस आंदोलन को किस दृष्टिकोण से देखें? यानी, सबसे महत्वपूर्ण यह है कि हम एक मिथकीय नायक पर कहां खड़े होकर नजर डाल रहे हैं. एक महान सांस्कृतिक युद्ध में छलांग लगाने से पूर्व हमें अपने लांचिंग पैड की जांच ठीक तरह से कर लेनी चाहिए. हमारे पास जोतिबा फूले, डॉ. आम्बेडकर और रामास्वामी पेरियार की तेजस्वी परंपरा है, जिसने आधुनिक काल में मिथकों के वैज्ञानिक अध्ययन की जमीन तैयार की है. महिषासुर को अपना नायक घोषित करने वाले इस आंदोलन को भी खुद को इसी परंपरा से जोड़ना होगा. जाहिर है, किसी भी प्रकार के धार्मिक कर्मकांड से तो इसे दूर रखना ही होगा, साथ ही मार्क्सवादी प्रविधियां भी इस आंदोलन में काम न आएंगी. न सिर्फ सिद्धांत के स्तर पर बल्कि ठोस, जमीनी स्तर पर भी इस आंदोलन को कर्मकांडियों और मार्क्सवादियों के लिए, समान रूप से, अपने दरवाजे कड़ाई से बंद करने होंगे. आंदोलन जैसे-जैसे गति पकड़ता जाएगा, ये दोनों ही चोर दरवाजों से इसमें प्रवेश के लिए उत्सुक होंगे.

सांस्कृतिक गुलामी क्रमशः सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक गुलामी को मजबूत करती है. उत्तर भारत में राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक गुलामी के विरुद्ध तो संघर्ष हुआ लेकिन सांस्कृतिक गुलामी अभी भी लगभग अछूती रही है. जो संघर्ष हुए भी, वे प्रायः धर्म सुधार के लिए हुए अथवा उनका दायरा हिंदू धर्म के इर्द-गिर्द ही रहा. हिंदू धर्म की नाभि पर प्रहार करने वाला आंदोलन कोई न हुआ. महिषासुर आंदोलन की महत्ता इसी में है कि यह हिंदू धर्म की जीवन-शक्ति पर चोट करने की क्षमता रखता है. इस आंदोलन के मुख्य रूप से दो दावेदार हैं, एक तो हिंदू धर्म के भीतर का सबसे बड़ा तबका, जिसे हम आज 'ओबीसी' के नाम से जानते हैं, दूसरा दावेदार हिंदू धर्म से बाहर है – आदिवासी. अगर यह आंदोलन इसी गति से आगे बढता रहा तो हिंदू

धर्म को भीतर और बाहर, दोनों ओर से करारी चोट देगा. इस आंदोलन का एक फलितार्थ यह भी निकलेगा कि हिंदू धर्म द्वारा दमित अन्य सामाजिक समूह भी धर्मग्रंथों के पाठों का विखंडन आरंभ करेंगे और अपने पाठ निर्मित करेंगे. इन नये पाठों की आवाजें जितनी मुखर होंगी, बहुजनों की सांस्कृतिक गुलामी की जंजीरें उतनी ही तेजी से टूटेंगी.

बहरहाल, यह पुस्तिका ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंटस फोरम, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के साथी जितेंद्र यादव और डॉ. अरुण कुमार तथा बहुजन आंदोलन के ध्वज-वाहक अग्रज श्री सुनील सरदार के आग्रह पर मुझे बहुत कम समय में तैयार करनी पड़ी रही है. इसके बावजूद यह संतोष है कि सभी महत्वपूर्ण लेख व सामग्री इस पुस्तिका में आ गयी है, जिनके माध्यम से आप इस आंदोलन की पृष्ठभूमि और त्वरा को समझ पाएंगे. एआईबीएसएफ की ओर से मैं इस आंदोलन में सहयोग के लिए श्री प्रेमकुमार मणि, आयवन कोस्का, अश्विनी कुमार पंकज, दिलीप मंडल व चंद्रभूषण सिंह यादव का विशेष रूप आभार व्यक्त करता हूं.

किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन?

–प्रेमकुमार मणि

शक्ति के विविध रूपों, यथा योग्यता, बल, पराक्रम, सामर्थ्य व ऊर्जा की पूजा सभ्यता के आदिकालों से होती रही है। न केवल भारत में बल्कि दुनिया के तमाम इलाकों में। दुनिया की पूरी मिथालाजी के प्रतीक देवी–देवताओं के तानों–बानों से ही बुनी गयी है। आज भी शक्ति का महत्व निर्विवाद है। अमेरिका की दादागीरी पूरी दुनिया में चल रही है, तो इसलिए कि उसके पास सबसे अधिक सामरिक शक्ति और संपदा है। जिनके पास एटम बम नहीं हैं, उनकी बात कोई नहीं सुनता, उनकी आवाज का कोई मूल्य नहीं है। गीता उसकी सुनी जाती है, जिसके हाथ में सुदर्शन हो। उसी की धौंस का मतलब है और उसी की विनम्रता का भी। कवि दिनकर ने लिखा है– 'क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो, उसको क्या जो दंतहीन, विषहीन, विनीत, सरल हो।'

दंतहीन और विषहीन सांप सभ्यता का स्वांग भी नहीं कर सकता। उसकी विनम्रता, उसका क्षमाभाव अर्थहीन हैं। बुद्ध ने कहा है–'जो कमजोर है, वह ठीक रास्ते पर नहीं चल सकता। उनकी अहिसंक सभ्यता में भी फुफकारने की छूट मिली हुई थी। जातक में एक कथा में एक उत्पाती सांप के बुद्धानुयायी हो जाने की चर्चा है। बुद्ध का अनुयायी हो जाने पर उसने लोगों को काटना–डंसना छोड़ दिया। लोगों को जब यह पता चल गया कि इसने काटना–डंसना छोड़ दिया है, तो उसे ईंट–पत्थरों से मारने लगे। इस पर भी उसने कुछ नहीं किया। ऐसे लहू–लुहान घायल अनुयायी से बुद्ध जब फिर मिले तो द्रवित हो गये और कहा 'मैंने काटने के लिए मना किया था मित्र, फुफकारने के लिए नहीं। तुम्हारी फुफकार से ही लोग भाग जाते।'

भारत में भी शक्ति की आराधना का पुराना इतिहास रहा है। लेकिन यह इतिहास बहुत सरल नहीं है। अनेक जटिलताएं और उलझाव हैं। सिंधु–घाटी की सभ्यता के समय शक्ति का जो प्रतीक था, वही आर्यों के आने के बाद नहीं रहा। पूर्ववैदिक काल, प्राक्वैदिक काल और उत्तरवैदिक काल में शक्ति के केंद्र अथवा प्रतीक बदलते रहे। आर्य सभ्यता का जैसे–जैसे प्रभाव बढ़ा, उसके विविध रुप हमारे सामने आये। इसीलिए आज का हिंदू यदि शक्ति के प्रतीक रूप में दुर्गा या किसी देवी को आदि और अंतिम मानकर चलता

है, तब वह बचपना करता है। सिंधु घाटी की जो अनार्य अथवा द्रविड़ सभ्यता थी, उसमें प्रकृति और पुरुष शक्ति के समन्वित प्रतीक माने जाते थे। शांति का जमाना था। मार्क्सवादियों की भाषा में आदिम साम्यवादी समाज के ठीक बाद का समय। सभ्यता का इतना विकास तो हो ही गया था कि पकी ईंटों के घरों में लोग रहने लगे थे और स्नानागार से लेकर बाजार तक बन गये थे। तांबई रंग और अपेक्षाकृत छोटी नासिका वाले इन द्रविड़ों का नेता ही शिव रहा होगा। अल्हड़ अलमस्त किस्म का नायक। इन द्रविड़ों की सभ्यता में शक्ति की पूजा का कोई माहौल नहीं था। यों भी उन्नत सभ्यताओं में शक्ति पूजा की चीज नहीं होती।

शक्ति पूजा का माहौल बना आर्यों के आगमन के बाद। सिंधु सभ्यता के शांत-सभ्य गौ-पालक (ध्यान दीजिए शिव की सवारी बैल और बैल की जननी गाय) द्रविड़ों को अपेक्षाकृत बर्बर अश्वारोही आर्यों ने तहस-नहस कर दिया और पीछे धकेल दिया। द्रविड़ आसानी से पीछे नहीं आये होंगे। भारतीय मिथकों मे जो देवासुर संग्राम है, वह इन द्रविड़ और आर्यों का ही संग्राम है। आर्यों का नेता इंद्र था। शक्ति का प्रतीक भी इंद्र ही था। वैदिक ऋषियों ने इस देवता, इंद्र की भरपूर स्तुति की है। तब आर्यों का सबसे बड़ा देवता, सबसे बड़ा नायक इंद्र था। वह वैदिक आर्यों का हरक्युलस था। तब किसी देवी की पूजा का कोई वर्णन नहीं मिलता। आर्यों का समाज पुरुष प्रधान था। पुरुषों का वर्चस्व था। द्रविड़ जमाने में प्रकृति को जो स्थान मिला था, वह लगभग समाप्त हो गया था। आर्य मातृभूमि का नहीं, पितृभूमि का नमन करने वाले थे। आर्य प्रभुत्व वाले समाज में पुरुषों का महत्व लंबे अरसे तक बना रहा। द्रविड़ों की ओर से इंद्र को लगातार चुनौती मिलती रही।

गौ-पालक कृष्ण का इतिहास से यदि कुछ संबंध बनता है, तो लोकोक्तियों के आधार पर उसके सांवलेपन से द्रविड़ नायक ही की तस्वीर बनती है। इस कृष्ण ने भी इंद्र की पूजा का सार्वजनिक विरोध किया। उसकी जगह अपनी सत्ता स्थापित की। शिव को भी आर्य समाज ने प्रमुख तीन देवताओं में शामिल कर लिया। इंद्र की तो छुट्टी हो ही गयी। भारतीय जनसंघ की कट्टरता से भारतीय जनता पार्टी की सीमित उदारता की ओर और अंततः एनडीए का एक ढांचा, आर्यों का समाज कुछ ऐसे ही बदला। फैलाव के लिए उदारता का वह स्वांग जरुरी होता है। पहले जार्ज और फिर शरद यादव की तरह शिव को संयोजक बनाना जरूरी था, क्योंकि इसके बिना निष्कंटक राज नहीं बनाया जा सकता था। आर्यों ने अपनी पुत्री पार्वती से शिव का विवाह कर सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश की। जब दोनों पक्ष मजबूत हों तो सामंजस्य और समन्वय होता है। जब एक पक्ष कमजोर हो जाता है, तो दूसरा पक्ष संहार करता है। आर्य और द्रविड़ दोनों मजबूत स्थिति में थे। दोनों में सामंजस्य ही संभव था। शक्ति की पूजा का सवाल

कहां था? शक्ति की पूजा तो संहार के बाद होती है। जो जीत जाता है वह पूज्य बन जाता है, जो हारता है वह पूजक।

हालांकि पूजा का सीमित भाव सभ्य समाजों में भी होता है, लेकिन वह नायकों की होती है, शक्तिमानों की नहीं। शक्तिमानों की पूजा कमजोर, काहिल और पराजित समाज करता है। शिव की पूजा नायक की पूजा है। शक्ति की पूजा वह नहीं है। मिथकों में जो रावण पूजा है, वह शक्ति की पूजा है। ताकत की पूजा, महाबली की वंदना।

लेकिन देवी के रूप में शक्ति की पूजा का क्या अर्थ है? अर्थ गूढ़ भी है और सामान्य भी। पूरबी समाज में मातृसत्तात्मक समाज व्यवस्था थी। पश्चिम के पितृसत्तात्मक समाज-व्यवस्था के ठीक उलट। पूरब सांस्कृतिक रुप से बंग भूमि है, जिसका फैलाव असम तक है। यही भूमि शक्ति देवी के रूप में उपासक है। शक्ति का एक अर्थ भग अथवा योनि भी है। योनि प्रजनन शक्ति का केंद्र है। प्राचीन समाजों में भूमि की उत्पादकता बढ़ाने के लिए जो यज्ञ होते थे, उसमें स्त्रियों को नग्न करके घुमाया जाता था। पूरब में स्त्री पारंपरिक रूप से शक्ति की प्रतीक मानी जाती रही है। इस परंपरा का इस्तेमाल ब्राह्मणों ने अपने लिए सांस्कृतिक रुप से किया। गैर-ब्राह्मणों को ब्राह्मण अथवा आर्य संस्कृति मे शामिल करने का सोचा-समझा अभियान था। आर्य संस्कृति का इसे पूरब में विस्तार भी कह सकते हैं। विस्तार के लिए यहां की मातृसत्तात्मक संस्कृति से समरस होना जरूरी था। सांस्कृतिक रुप से यह भी समन्वय था। पितृसत्तात्मक संस्कृति से मातृसत्तात्मक संस्कृति का समन्वय। आर्य संस्कृति को स्त्री का महत्त्व स्वीकारना पड़ा, उसकी ताकत रेखांकित करनी पड़ी। देव की जगह देवी महत्वपूर्ण हो गयी। शक्ति का यह पूर्व-रूप (पूरबी रूप) था जो आर्य संस्कृति के लिए अपूर्व (पहले न हुआ) था।

महिषासुर और दुर्गा के मिथक क्या हैं?

लेकिन महिषासुर और दुर्गा के मिथक हैं, वह क्या है? दुर्भाग्यपूर्ण है कि अब तक हमने अभिजात ब्राह्मण नजरिये से ही इस पूरी कथा को देखा है। मुझे स्मरण है १९७१ में भारत-पाक युद्ध और बंग्लादेश के निर्माण के बाद तत्कालीन जनसंघ नेता अटलबिहारी वाजपेयी ने तब की प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को अभिनव चंडी दुर्गा कहा था। तब तक कम्युनिस्ट नेता डांगे सठियाये नहीं थे। उन्होंने इसका तीखा विरोध करते हुए कहा था कि 'अटल बिहारी नहीं जान रहे हैं कि वह क्या कह रहे हैं और श्रीमती गांधी नहीं जान रही हैं कि वह क्या सुन रही हैं। दोनों को यह जानना चाहिए कि चंडी दुर्गा दलित और पिछड़े तबकों की संहारक थी।' डांगे के वक्तव्य के बाद इंदिरा गांधी ने संसद में ही कहा था 'मैं केवल इंदिरा हूं और यही रहना चाहती हूं।'

महिषासुर और दुर्गा की कथा का शूद्र पाठ (और शायद शुद्ध भी) इस तरह

है। महिष का मतलब भैंस होता है। महिषासुर यानी महिष का असुर। असुर मतलब सुर से अलग। सुर का मतलब देवता। देवता मतलब ब्राह्मण या सवर्ण। सुर कोई काम नहीं करते। असुर मतलब जो काम करते हों। आज के अर्थ में कर्मी। महिषासुर का अर्थ होगा भैंस पालने वाले लोग अर्थात् भैंसपालक। दूध का धंधा करने वाला। ग्वाला। असुर से अहुर फिर अहीर भी बन सकता है। महिषासुर यानी भैंसपालक बंग देश के वर्चस्व प्राप्त जन रहे होंगे। नस्ल होगी द्रविड़। आर्य संस्कृति के विरोधी भी रहे होंगे। आर्यों को इन्हें पराजित करना था। इन लोगों ने दुर्गा का इस्तेमाल किया। बंग देश में वेश्याएं दुर्गा को अपने कुल का बतलाती हैं। दुर्गा की प्रतिमा बनाने में आज भी वेश्या के घर से थोड़ी मिट्टी जरुर मंगायी जाती है। भैंसपालक के नायक महिषासुर को मारने में दुर्गा को नौ रात लग गयी। जिन ब्राह्मणों ने उन्हें भेजा था, वे सांस रोक कर नौ रात तक इंतजार करते रहे। यह कठिन साधना थी। बल नहीं तो छल। छल का बल। नौवीं रात को दुर्गा को सफलता मिल गयी, उसने महिषासुर का वध कर दिया। खबर मिलते ही आर्यों (ब्राह्मणों) में उत्साह की लहर दौड़ गयी। महिषासुर के लोगों पर वह टूट पड़े और उनके मुंड (मस्तक) काटकर उन्होंने एक नयी तरह की माला बनायी। यही माला उन्होंने दुर्गा के गले में डाल दी। दुर्गा ने जो काम किया, वह तो इंद्र ने भी नहीं किया था। पार्वती ने भी शिव को पटाया भर था, संहार नहीं किया था। दुर्गा ने तो अजूबा किया था। वह सबसे महत्त्वपूर्ण थीं। सबसे अधिक धन्या शक्ति का साक्षात् अवतार!

(हिंदी के प्रतिनिधि कथाकार, चिंतक व राजनीतिकर्मी प्रेमकुमार मणि का यह लेख महिषासुर शहादत आंदोलन का प्रस्थान बिंदु है. उन्होंने यह लेख लगभग एक दशक पूर्व दैनिक हिन्दुस्तान के पटना के संस्करण के लिए लिखा था. उसके बाद यह पटना से प्रकाशित 'जन विकल्प' के अक्टूबर, २००७ अंक में प्रकाशित हुआ. लेकिन उसके बावजूद यह लेख 'फारवर्ड प्रेस' के अक्टूबर, 2011 अंक में प्रकाशित होने तक अलक्षित ही रहा। 'फारवर्ड प्रेस' में प्रकाशित होने के बाद इस महत्वपूर्ण लेख पर बुद्धिजीवियों तथा जेएनयू के छात्रों के नजर गयी, उसके बाद से उत्तर भारत में विशद पैमाने पर महिषासुर विषयक आंदोलन का जन्म हुआ।)

देखो मुझे, महाप्रतापी महिषासुर की वंशज हूं मैं

–अश्विनी कुमार पंकज

विजयादशमी, दशहरा या नवरात्रि का हिन्दू धार्मिक उत्सव, 'असुर' राजा महिषासुर व उसके अनुयायियों के आर्यों द्वारा वध और सामूहिक नरसंहार का अनुष्ठान है। समूचा वैदिक साहित्य सुर–असुर या देव–दानवों के युद्ध वर्णनों से भरा पड़ा है। लेकिन सच क्या है? असुर कौन हैं, और भारतीय सभ्यता, संस्कृति और समाज–व्यवस्था के विकास में उनकी क्या भूमिका रही है?

इस दशहरा पर, आइये मैं आपका परिचय असुर वंश की एक युवती से करवाता हूं।

वास्तव में, सदियों से चले आ रहे असुरों के खिलाफ हिंसक रक्तपात के बावजूद आज भी झारखंड और छत्तीसगढ़ के कुछ इलाकों में 'असुरों' का अस्तित्व बचा हुआ है। ये असुर कहीं से हिंदू धर्मग्रंथों में वर्णित 'राक्षस' जैसे नहीं हैं। हमारी और आपकी तरह इंसान हैं। परंतु २१वीं सदी के भारत में भी असुरों के प्रति न तो नजरिया बदला है और न ही उनके खिलाफ हमले बंद हुए हैं। शिक्षा, साहित्य, राजनीति आदि जीवन–समाज के सभी अंगों में 'राक्षसों' के खिलाफ प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण का ही वर्चस्व है।

भारत सरकार ने 'असुर' को आदिम जनजाति की श्रेणी में रखा है। अर्थात् आदिवासियों में भी प्राचीन। घने जंगलों के बीच ऊंचाई पर बसे नेतरहाट पठार पर रहने वाली सुषमा इसी 'आदिम जनजाति' असुर समुदाय से आती है। सुषमा गांव सखुआपानी (डुम्बरपाट), पंचायत गुरदारी, प्रखण्ड बिशुनपुर, जिला गुमला (झारखंड) की रहने वाली है। वह अपने आदिम आदिवासी समुदाय असुर समाज की पहली रचनाकार है। यह साधारण बात नहीं है। क्योंकि वह उस असुर समुदाय से आती है जिसका लिखित अक्षरों से हाल ही में रिश्ता कायम हुआ है। सुषमा इंटर पास है पर अपने समुदाय के अस्तित्व के संकट को वह बखूबी पहचानती है। झारखंड का नेतरहाट, जो एक बेहद खूबसूरत प्राकृतिक रहवास है असुर आदिवासियों का, वह बिड़ला के बाक्साइट दोहन के कारण लगातार बदरंग हो रहा है। आदिम जनजातियों के लिए केन्द्र और झारखंड

के राज्य सरकारों द्वारा आदिम जनजाति के लिए चलाए जा रहे विशेष कल्याणकारी कार्यक्रमों और बिड़ला के खनन उद्योग के बावजूद असुर आदिम आदिवासी समुदाय विकास के हाशिए पर है। वे अघोषित और अदृश्य युद्धों में लगातार मारे जा रहे हैं। वर्ष 1981 में झारखंड में असुरों की जनसंख्या 9100 थी जो वर्ष 2003 में घटकर 7793 रह गई है। जबकि आज की तारीख में छत्तीसगढ़ में असुरों की कुल आबादी महज 305 है। वैसे छत्तीसगढ़ के अगरिया आदिवासी समुदाय को वैरयर एल्विन ने असुर ही माना है। क्योंकि असुर और अगरिया दोनों ही समुदाय प्राचीन धातुवैज्ञानिक हैं जिनका परंपरागत पेशा लोहे का शोधन रहा है। आज के भारत का समूचा लोहा और स्टील उद्योग असुरों के ही ज्ञान के आधार पर विकसित हुआ है लेकिन उनकी दुनिया के औद्योगिक विकास की सबसे बड़ी कीमत भी इन्होंने ही चुकायी है। 1872 में जब देश में पहली जनगणना हुई थी, तब जिन 18 जनजातियों को मूल आदिवासी श्रेणी में रखा गया था, उसमें असुर आदिवासी पहले नंबर पर थे, लेकिन पिछले डेढ़ सौ सालों में इस आदिवासी समुदाय को लगातार पीछे ही धकेला गया है।

झारखंड और छत्तीसगढ़ के अलावा पश्चिम बंगाल के तराई इलाके में भी कुछ संख्या में असुर समुदाय रहते हैं। वहां के असुर बच्चे मिट्टी से बने शेर के खिलौनों से खेलते तो हैं, लेकिन उनके सिर काट कर। क्योंकि उनका विश्वास है कि शेर उस दुर्गा की सवारी है, जिसने उनके पुरखों का नरसंहार किया था।

बीबीसी की एक रपट में जलपाईगुड़ी ज़िले में स्थित अलीपुरदुआर के पास माझेरडाबरी चाय बागान में रहने वाले दहारु असुर कहते हैं, महिषासुर दोनों लोकों- यानी स्वर्ग और पृथ्वी, पर सबसे ज्यादा ताकतवर थे। देवताओं को लगता था कि अगर महिषासुर लंबे समय तक जीवित रहा तो लोग देवताओं की पूजा करना छोड़ देंगे। इसलिए उन सबने मिल कर धोखे से उसे मार डाला। महिषासुर के मारे जाने के बाद ही हमारे पूर्वजों ने देवताओं की पूजा बंद कर दी थी। हम अब भी उसी परंपरा का पालन कर रहे हैं।

सुषमा असुर भी झारखंड में यही सवाल उठाती है। वह कहती है-मैंने स्कूल की किताबों में पढ़ा है कि हमलोग राक्षस हैं और हमारे पूर्वज लोगों को सताने, लूटने, मारने का काम करते थे। इसीलिए देवताओं ने असुरों का संहार किया। हमारे पूर्वजों की सामूहिक हत्याएं की। हमारे समुदाय का नरसंहार किया। हमारे नरंसहारों के विजय की स्मृति में ही हिंदू लोग दशहरा जैसे त्योहारों को मनाते हैं। जबकि मैंने बचपन से देखा और महसूसा है कि हमने किसी का कुछ नहीं लूटा। उल्टे वे ही लूट.मार कर रहे हैं। बिड़ला हो, सरकार हो या फिर बाहरी समाज हो, इन सभी लोगों ने हमारे इलाकों में आकर हमारा सबकुछ लूटा और लूट रहे हैं। हमें अपने जल, जंगल, जमीन ही नहीं बल्कि हमारी भाषा-संस्कृति से भी हर रोज विस्थापित किया जा रहा है। तो आपलोग सोचिए

राक्षस कौन है?'

यहां यह जानना भी प्रासंगिक होगा कि भारत के अधिकांश आदिवासी समुदाय 'रावण' को अपना वंशज मानते हैं। दक्षिण के अनेक द्रविड़ समुदायों में रावण की आराधना का प्रचलन है। बंगाल, उड़ीसा, असम और झारखंड के आदिवासियों में सबसे बड़ा आदिवासी समुदाय 'संताल' भी स्वयं को रावण वंशज घोषित करता है। झारखंड-बंगाल के सीमावर्ती इलाके में तो बकायदा नवरात्रि या दशहरा के समय ही 'रावणोत्सव' का आयोजन होता है। यही नहीं संताल लोग आज भी अपने बच्चो का नाम 'रावण' रखते हैं। झारखंड में जब 2008 में 'यूनाइटेड प्रोग्रेसिव एलायंस' (यूपीए) की सरकार बनी थी संताल आदिवासी समुदाय के शिबू सोरेन जो उस वक्त झारखंड के मुख्यमंत्री थे, उन्होंने रावण को शमशान विद्वान और अपना 'कुलगुरु' बताते हुए दशहरे के दौरान रावण का पुतला जलाने से इंकार कर दिया था। मुख्यमंत्री रहते हुए सोरेन ने कहा था कि कोई व्यक्ति अपने कुलगुरु को कैसे जला सकता है, जिसकी वह पूजा करता है? गौरतलब है कि रांची के मोरहाबादी मैदान में पंजाबी और हिंदू बिरादरी संगठन द्वारा आयोजित विजयादशमी त्योहार के दिन मुख्यमंत्री द्वारा ही रावण के पुतले को जलाने की परंपरा है। भारत में आदिवासियों के सबसे बड़े बुद्धिजीवी और अंतरराष्ट्रीय स्तर के विद्वान स्व. डा. रामदयाल मुण्डा का भी यही मत था।

ऐसा नहीं है कि सिर्फ आदिवासी समुदाय और दक्षिण भारत के द्रविड़ लोग ही रावण को अपना वंशज मानते हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के बदायूं के मोहल्ला साहूकारा में भी सालों पुराना रावण का एक मंदिर है, जहां उसकी प्रतिमा भगवान शिव से बड़ी है और जहां दशहरा 'शोक दिवस' के रूप में मनाया जाता है। इसी तरह इंदौर में रावण प्रेमियों का एक संगठन है, लंकेश मित्र मंडल। राजस्थान के जोधपुर में गोधा एवं श्रीमाली समाज वहां के रावण मंदिर में प्रति वर्ष दशानन श्राद्ध कर्म का आयोजन करते हैं और दशहरे पर सूतक मानते हैं। गोधा एवं श्रीमाली समाज का मानना है कि रावण उनके पुरखे थे व उनकी रानी मंदोदरी यहीं के मंडोरकी थीं। पिछले वर्ष जेएनयू में भी दलित-आदिवासी और पिछड़े वर्ग के छात्रों ने ब्राह्मणवादी दशहरा के विरोध में आयोजन किया था।

सुषमा असुर पिछले वर्ष बंगाल में संताली समुदाय द्वारा आयोजित 'रावणोत्सव' में बतौर मुख्य अतिथि शामिल हुई थी। अभी बहुत सारे लोग हमारे संगठन 'झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा' को अप्रोच करते हैं सुषमा असुर को देखने, बुलाने और जानने के लिए। सुषमा दलित-आदिवासी और पिछड़े समुदायों के इसी सांस्कृतिक संगठन से जुड़ी हुई है। कई जगहों पर जा चुकी और नये निमंत्रणों पर सुषमा कहती है; 'मुझे आश्चर्य होता है कि पढ़ा-लिखा समाज और देश अभी भी हम असुरों को 'कई सिरों',

‘बड़े-बड़े दांतो-नाखुनों’ और ‘छल-कपट जादू जानने’ वाला जैसा ही राक्षस मानता है। लोग मुझमे ‘राक्षस’ ढूंढते हैं पर उन्हें निराशा हाथ लगती है। बड़ी मुश्किल से वे स्वीकार कर पाते हैं कि मैं भी उन्हीं की तरह एक इंसान हूं। हमारे प्रति यह भेदभाव और शोषण-उत्पीड़न का रवैया बंद होना चाहिए। अगर समाज हमें इंसान मानता है तो उसे अपने सारे धार्मिक पूर्वाग्रहों को तत्काल छोड़ना होगा और सार्वजनिक अपमान व नस्लीय संहार के उत्सव ‘विजयादशमी’ को राष्ट्रीय शर्म के दिन के रूप में बदलना होगा।’

(फारवर्ड प्रेस के अक्टूबर, 2012 अंक से साभार)

धार्मिक ग्रंथों का पुनर्पाठः कबीर, फुले, आंबेडकर और पेरियार की परंपरा

–दिलीप मंडल

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में महिषासुर–दुर्गा की कथा से ऊपजे विवाद पर धार्मिक भावनाओं को आहत करने के कथित आरोप में **'ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम'** के अध्यक्ष जितेंद्र यादव को विश्वविद्यालय प्रशासन द्वारा नोटिस तथा इसे लेकर छात्रों के एक खास वर्ग की असहनशीलता किसी भी शैक्षणिक संस्थान और अकादमिक वातावरण के हित में नहीं है।

प्रश्न उठता है कि क्या धार्मिक ग्रंथ की वैकल्पिक और अन्य व्याख्याओं की बात नहीं की जा सकती? इस प्रश्न के उत्तर के लिए हमें अपने ही महापुरुषों की ओर देखना चाहेंगे। क्या इस संगठन द्वारा पिछले दिनों जारी पोस्टर किसी नई परंपरा की शरुआत है, जिसे विरोध झेलना पड़ रहा है, यह फिर यह पुनर्पाठ की उस गौरवशाली परंपरा का हिस्सा है, जिसने देश में वैज्ञानिक चिंतन की आधारभूमि तैयार की? खुद ये धार्मिक ग्रंथ किसी एकांगी सत्य को सामने नहीं रखते और इनकी कई कथाएं एक दूसरे के समानांतर और एक दूसरे को काटती हुई चलती हैं। रामायण की सैकड़ों अलग अलग कथाएं हैं। इंद्र कई रूपों में चित्रित किए गए हैं। कृष्ण कहीं आर्यों के राजा इंद्र से युद्धरत हैं तो कहीं वर्ण–व्यवस्था की स्थापना करने के लिए गीता का उपदेश देते नजर आते हैं।

प्रश्न उठता है कि इन ग्रंथों से भी क्या किसी की भावनाओं को ठेस पहुंचती हैं? धार्मिक ग्रंथों की अलग–अलग व्याख्याओं के कारण नए धर्म बने हैं, धर्मों के अंदर अलग–अलग पंथ और संप्रदाय बने हैं। अलग–अलग पूजा पद्धतियों का आधार भी धर्म ग्रंथों की अलग–अलग व्याख्याएं हैं। इसे लेकर असहनशीलता हमेशा हिंसा को जन्म देती है। पुनर्पाठ या वैकल्पिक पाठ की प्रक्रिया को बाधित करना न सिर्फ लोकतंत्र के खिलाफ है बल्कि अकादमिक परिदृश्य में इसे ज्ञान–विरुद्ध भी माना जाएगा। अगर स्थापित मान्यताओं को चुनौती देना खतरनाक करार दिया जाएगा, तो कोई कोपरनिकस, कोई

गैलिलियो, कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई फुले, कोई आंबेडकर नहीं बन पाएगा। जो जैसा है, उसे उसी रूप में रटना ज्ञान नहीं है। उसे चुनौती देकर ही ज्ञान की परंपरा आगे बढ़ी है। हम कबीर की उसी परंपरा में विश्वास करते हैं, जिसे पेरियार आगे बढ़ाते हैं।

पुनर्पाठ की परंपरा : ज्योतिबा फुले

आधुनिक भारत के सबसे प्रखर चिंतकों में एक ज्योतिबा फुले तमाम धार्मिक-सामाजिक क्रांतिकारियों के प्रेरणास्रोत हैं। डॉ. आंबेडकर से लेकर मोहनदास करमचंद गांधी तक परस्पर विरोधी विचार रखने वालों ने भी फुले की प्रेरणा और उनके महत्व को स्वीकार किया है। फुले साहित्य का मराठी से हिंदी में अनुवाद करने वाले डॉ. विमलकीर्ति कहते हैं कि- भारत में जब तक सामाजिक और धार्मिक शोषण रहेगा...तब तक उनको भी याद किया जाएगा, इसमें कोई दो राय नहीं है।

फुले भारतीय समाज की बीमारी को समझने की कोशिश के क्रम में धर्मग्रंथों का लगातार विखंडन और व्याख्या करते हैं। उन्होंने अपने कालजयी कृति 'गुलामगीरी' में हिंदू मिथकों, पुराण कथाओं के अर्थों को खोलकर समझाया है। फुले लिखते हैं- ''ब्राह्मणों के जिन धर्मग्रंथों के आधार पर हम (शूद्रादि-अतिशूद्र यानी ओबीसी और दलित) लोग ब्राह्मण के गुलाम हैं और उनके कई ग्रंथ-शास्त्रों में हमारी गुलामी के समर्थन में लेख लिखे हुए मिलते हैं, उन सभी ग्रंथों का, धर्मशास्त्रों का और उसका जिन-जिन धर्मशास्त्रों से संबंध होगा, उन सभी धर्मग्रंथों का हम निषेध करते हैं।''

'गुलामगीरी' की भूमिका में ही फुले इस बात की स्पष्ट व्याख्या करते हैं कि धर्मग्रंथों के झूठे प्रचार का पर्दाफाश क्यों जरुरी है। वे इस बात को समझते हैं कि भारत के शूद्रादि-अतिशूद्रों की गुलामी के मूल में इन ग्रंथों की बड़ी भूमिका है। इसलिए वे धर्मग्रंथों और मिथकों की खूब चीरफाड़ करते हैं और इस काम को वे वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ करते हैं। वे लिखते हैं- ''ब्राह्मण-पुरोहितों ने इन पर अपना वर्चस्व कायम करने के लिए, इन्हें सदा सदा के लिए गुलाम बनाए रखने के लिए, केवल अपने निजी स्वार्थों को ही दृष्टि में रखकर, एक से अधिक बनावटी ग्रंथों की रचना करके कामयाबी हासिल की। उन नकली ग्रंथों में उन्होंने यह दिखाने का पूरा प्रयास किया कि उन्हें जो विशेष अधिकार प्राप्त हैं, वे सब उन्हें ईश्वर ने दिए हैं। इस तरह का झूठा प्रचार उस समय अनपढ़ लोगों में किया गया और उस समय के शूद्रादि-अतिशूद्रों में मानसिक गुलामी के बीज बोए गए।''

फुले आगे लिखते हैं- ''उन ग्रंथों में हर तरह से ब्राह्मणों-पुजारियों का महत्व बताया गया है। ब्राह्मणों-पुरोहितों का शूद्रादि-अतिशूद्रों के मन-मस्तिष्क पर हमेशा-हमेशा के लिए वर्चस्व बना रहे, इसलिए उन्हें ईश्वर से भी श्रेष्ठ समझा गया है।...जिस ईश्वर

ने शूद्रादि-अतिशूद्रों को और अन्य लोगों को अपने द्वारा निर्मित इस सृष्टि की सभी वस्तुओं को समान रूप से उपभोग करने की पूरी आजादी दी है, उस ईश्वर के नाम पर ब्राह्मण-पंडा-पुरोहित एकदम झूठे ग्रंथों की रचना करके, उन ग्रंथों में सभी के (मानवी) हक को नकारते हुए स्वयं मालिक बन बैठे।...ब्राह्मण-पंडा-पुरोहित लोग अपना पेट पालने के लिए, अपने पाखंडी ग्रंथों द्वारा, जगह-जगह, बार-बार, अज्ञानी शूद्रों को उपदेश देते रहे, जिसकी वजह से उनके मन-मस्तिष्क में ब्राह्मणों के प्रति पूज्य भाव पैदा होता रहा।''

फुले का पुनर्पाठ : निर्मम वैज्ञानिक दृष्टि

ज्योतिबा फुले जब पुराने मिथकों और ग्रंथों के बारे में लिखते हैं, तो एक बात निरंतरता में नजर आती है। वह है असंगत-अवैज्ञानिक बातों का तर्कों के आधार पर विखंडन। ऐसा करते हुए वे इस बात की परवाह नहीं करते कि इसकी वजह से किसी की भावनाओं को चोट पहुंचेगी। फुले अपने लेखन में सिर्फ पिछड़ों और दलितों को संबोधित नहीं करते थे, बल्कि वे समाज के प्रभु वर्ग से भी संवाद कर रहे थे। इसके बावजूद वे इन धर्मग्रंथों को बिना किसी लाग-लपेट के-''ब्राह्मणों के नकली-पाखंडी धर्म (ग्रंथ)'' कहते हैं।

फुले रचित 'गुलामगीरी' के कुछ अंशों को देखें तो स्पष्ट हो जाएगा कि वे प्राचीन मिथकों और ग्रंथों का कितनी निर्ममता के साथ खंडन करते हैं और उनका मजाक उड़ाते हैं-

1. अब ब्राह्मण को पैदा करने वाले ब्रह्मा का जो मुंह है, वह हर माह मासिक धर्म (माहवारी) आने पर तीन-चार दिन के लिए अपवित्र (बहिष्कृत) होता था या लिंगायत नारियों की तरह भस्म लगाकर पवित्र (शुद्ध) होकर घर के काम-धंधे में लग जाता था। क्या इसके बारे में मनु ने कुछ लिखा है या नहीं?... (धोंडीराव) आज के ब्राह्मण लिंगायतों से इसलिए घृणा करते हैं, क्योंकि वे इसमें छुआ छूत नहीं मानते।

2. इससे तुम सोच ही सकते हो कि ब्राह्मण का मुंह, बाहें, जांघें और पांव- इन चार अंगों की योनि, माहवारी (रजस्वला) के कारण, उसको कुल मिलाकर सोलह दिनों के लिए अशुद्ध होकर दूर-दूर रहना पड़ता होगा। फिर सवाल उठता है कि उसके घर का काम-धंधा कौन करता होगा?

3. वह गर्भ ब्रह्मा के मुंह में जिस दिन से ठहरा, उस दिन से लेकर नौ महीने तक किस स्थान पर रहकर बढ़ता रहा...फिर जब यह ब्राह्मण पैदा हुआ, उस नवजात शिशु को ब्रह्मा ने अपने स्तन से दूध पिलाया या बाहर का दूध पिलाकर छोटे से बड़ा किया।

फुले ने मिथकों के पुनर्पाठ के माध्यम से वर्ण-व्यवस्था के मूलाधार ऋग्वेद के

पुरुष सूक्त को अवैज्ञानिक और कोरा गप करार दिया है। ऐसा करते समय उनका लक्ष्य सिर्फ यह स्थापित करना है कि हर मनुष्य उत्पत्ति की दृष्टि से समान है। कोई मनुष्य मुंह से पैदा नहीं हो सकता। क्या फुले ऐसा करते हुए किसी की भावनाओं को ठेस पहुंचा रहे थे? हां। मुमकिन है कि इस लेखन से किसी को ठेस पहुंच रही हो, लेकिन इस वजह से सत्य कहने के ऐतिहासिक कार्यभार को फुले ने मुल्तवी नहीं किया। क्योंकि जैसे ही कोई यह मान लेता है कि ब्राह्मण ब्रह्मा के मुंह से पैदा हुए हैं, इसके साथ ही यह भी मान्यता होती है कि इस देश के बहुजन पैर से पैदा हुए हैं। यह बात ऊंच-नीच को धार्मिक मान्यताओं के साथ स्थापित करती है। इसलिए इसका खंडन जरुरी है, बेशक इससे किसी की धार्मिक भावनाओं को ठेस लगती हो।

इसी तरह फुले ब्रह्मा और सरस्वती की कथा का भी खंडन करते हैं। वे लिखते हैं।

1. धोंढीराव- उसके (ब्रह्मा के) शेष तीन सिर इस झमेले से दूर थे या नहीं? आपकी राय इस बारे में क्या है? उस रंडीबाज (यही शब्द हैं) को इस तरह मां बनने की इच्छा क्यों पैदा हुई होगी?

ज्योतिराव- वह रंडीबाज इतना गिरा हुआ आदमी था कि उसने सरस्वती नाम की अपनी कन्या से ही संभोग (व्यभिचार) किया था। इसलिए उसका उपनाम 'बेटीचोद' (यही शब्द हैं) हो गया है। इसी बुरे कर्म के कारण कोई व्यक्ति उसका मान सम्मान (पूजा) नहीं कर रहा है।

फुले दरअसल पुरानी परंपराओं का खंडन करते हुए लगातार वर्णव्यवस्था के धार्मिक आधार पर चोट करते हैं। 'गुलामगीरी' में वे एक स्थान पर लिखते हैं-ब्रह्मा के चार मुंह होते तो इसी हिसाब से उसके आठ स्तन, चार नाभियां, चार योनियां और चार मलद्वार होने चाहिए(धोंडीराव)। (वही, पेज 32)

वामन और बलीराजा की कथा की मीमांसा करते हुए वे लिखते हैं- जब उस गलीज गेंडे (यही मूल शब्द हैं) ने अपने दो कदमों से सारी धरती और आकाश को घेर लिया, तब उसके पहले ही कदम के नीचे, कई गांव, गांव के लोग दब गए होंगे, और उन्होंने अपनी निर्दोष जानें गंवाईं होंगी या नहीं? दूसरी बात यह कि जब उस गलीज गेंडे ने.... (आदि आदि)..फिर जब वह गलीज गेंडा मरा होगा, तब उसकी उस विशाल लाश को श्मशान ले जाने के लिए कंधा देने वाले चार लोग कहां से आए होंगे।. ..यदि उस तरह की विशालकाय लाश को जलाने के लिए पर्याप्त लकड़ियां नहीं मिली होंगी, यह कहा जाए, तब उसको वहीं के कुत्ते-सियारों ने नोंच नोंचकर खा लिया होगा।

यहां पर फुले धर्म ग्रंथों के बारे में एक महत्वपूर्ण टिप्पणी करते हैं: इसका मतलब स्पष्ट है कि उपाध्यों ने बाद में समय देखकर सभी पुराण-कथाओं से इस तरह के ग्रंथों

की रचना की होगी, यही सिद्ध होता है। (वही)

फुले को हम उस परंपरा की शुरुआत करने वाला मान सकते हैं, जिस परंपरा में आगे चलकर प्रेमकुमार मणि तक आते हैं, जिनके एक लेख से बनाए गए पोस्टर को लेकर पोंगापंथियों ने इतना हंगामा मचा रखा है।

दुर्गा और महिषासुर की कथा की बात करें तो संविधान निर्माता डॉ आंबेडकर इस कथा को ''not merely a riddle, but an absurdity'' करार देते हैं। वे लिखते हैं कि–It requires explanation why this doctrine of Sakti was invented.

कुल मिलाकर जेएनयू में 'ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम' द्वारा चिपकाया गया पोस्टर कोई अनूठी बात नहीं कहता। यह फुले–आबंडेकर–पेरियार की परंपरा में कही गई बात ही है। ऐसी सैकड़ों किताबें जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी में हैं, जिनमें धार्मिक ग्रंथों का पुनर्पाठ है। इसमें साहित्य से लेकर तमाम तरह का लेखन है। इस परंपरा की शुरुआत आप कबीर से मान सकते हैं जो आगे चलकर राजेंद्र यादव और प्रेम कुमार मणि तक पहुंचती है।

(दिलीप मंडल इंडिया टुडे के कार्यकारी संपादक है। उन्होंने यह लेख वर्ष 2011 में जेएनयू में चल रहे महिषासुर शहादत दिवस आंदोलन के संदर्भ में लिखा था, जो अभी तक अप्रकाशित था)

महिषासुर यादव वंश के राजा थे

–चंद्रभूषण सिंह यादव

जेएनयू, नई दिल्ली में ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम द्वारा वर्ष 2011 से 'महिषासुर शहादत दिवस' मनाने से देशभर में एक नई बहस की शुरुआत हुई है। वैसे तो अप्रैल से जून 2011 के अंक में 'यादव शक्ति' पत्रिका ने श्री एन.यादव लखनऊ द्वारा लिखे 'यदुवंश शिरोमणि महिषासुर' शीर्षक लेख का प्रकाशन कर महिषासुर के संदर्भ में एकपक्षीय बहस पर विराम लगाने की कोशिश शुरु कर दी थी लेकिन जेएनयू में जितेन्द्र यादव द्वारा 'महिषासुर शहादत दिवस' की शुरुआत करने के बाद महिषासुर के पक्षधर लोग खुलकर सामने आ गये हैं। मैं यादव होने के नाते निःसंकोच कह सकता हूँ कि उत्तर भारत और खास तौर पर उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल में विकराल रुप धारण कर रहे दुर्गापूजा समारोह में सर्वाधिक सहभागिता यादवों की होती है। महिषासुर मर्दिनी की जय बोलने वाले ज्यादातर लोग यादव बिरादरी के ही हैं। इनके बाद अन्य ओबीसी जातियां और दलित भी पूरे दम खम से महिषासुर विनाशनी दुर्गा के प्रचंड भक्त हैं। ये पिछड़े, दलित नौ दिन नवरात्र व्रत से लेकर हवन, पूजन, बलि, दुर्गा मूर्ति स्थापना आदि में लाखों–लाख खर्च कर रहें हैं। ये कमेरे वर्ग के लोग दुर्गा को शक्तिशाली मानकर नवरात्र में पूरे मनोयोग से पूजा कर रहें हैं और ये उम्मीद लगाते हैं कि महान बलशाली महिषासुर को मारने वाली दुर्गा प्रसन्न होकर इन्हें प्रतापी बना देगी। इसी उम्मीद में देश का सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ा तबका अपना पेट काटकर शक्ति की प्रतीक दुर्गा की आराधना में लगा हुआ है। वह इस पर विचार नहीं करता है कि सुर–असुर संग्राम अर्थात् आर्य–अनार्य संग्राम में आर्य संस्कृति (ब्राह्मणवाद) के घोर विरोधी महिषासुर का वध करने वाली दुर्गा ने प्रकारान्तर से हम पिछड़ो को अपना सामाजिक एवं सांस्कृतिक गुलाम बनाने के लिए हमारे पूर्वज महिषासुर की हत्या छलपूर्वक किया था। हजारों वर्ष पूर्व आर्य संस्कृति की राह में बाधक बने महिषासुर की छलपूर्वक हत्या करने वाली दुर्गा की पूजा अभिजात्य वर्ग के लोग हमसे क्यों करा रहें हैं? क्या देवी दुर्गा वास्तव में शक्ति की देवी है, महाप्रतापी है, दुश्मनों का नाश करने वाली है? यदि है तो गोरी, गजनी, बाबर, डलहौजी, विक्टोरिया का वध इस देवी दुर्गा ने क्यों नहीं किया? क्यों एक भैंसवार,

काले-कलूटे, पहलवान, उभरी मांसपेशियों एवं खड़ी मूछों वाले बहादुर महिषासुर का ही वध (हत्या) किया? महिषासुर को यादव कहने पर सबसे अधिक नाराजगी यादवों को होगी, ऐसा मै समझता हूँ लेकिन सत्य तो सत्य ही रहेगा। हम सत्य को कब तक झुठला सकेंगे। महिषासुर का समास विग्रह महिष-असुर होगा। महिष का अर्थ है भैंस और असुर का अर्थ इस देश के उस मूल निवासी से है जो हिंसा विरोधी एवं प्रकृति का पूजनहार है। हिन्दुस्तान अखबार के ६ जनवरी २०११ के अंक में सुप्रीम कोर्ट के तत्कालीन जस्टिस श्री मारकण्डेय काटजू एवं श्री ज्ञानसुधा मिश्रा ने अपने एक निर्णय में कहा-"राक्षस और असुर कहे जाने वाले लोग ही इस देश के असली नागरिक हैं।" सुरा अर्थात् शराब का सेवनहार 'सुर' एवं सुरा अर्थात् शराब के सेवन का विरोधी 'असुर' के रूप में समझा जा सकता है। ऋग्वेद सुरापान (सोमरस) के श्लोंकों से भरा पड़ा है। ऋग्वेद, वाल्मीकि रामायण सहित हिन्दू धर्मशास्त्र नरमेघ यज्ञ, गोमेघ यज्ञ, अश्वमेघ यज्ञ आदि के महिमा से महिमामंडित है। असुर या राक्षस का नाम आते ही हमारे सामने एक भयानक रूप दिखने लगता है जो अभिजात्यवर्गीय-ब्राह्मणवादी साहित्य में हमें पढ़ने को मिलता है। सम्पूर्ण ब्राह्मणवादी साहित्य असुरों के विरोध एवं वध (हत्या) से भरा पड़ा है। इस साहित्य में यह कहीं जिक्र नहीं हैं कि असुरों ने मानवता के विरुद्ध कौन सा अपराध किया। असुर नायकों एवं उनकी सेना के वध का एक मात्र कारण इनके यज्ञों का विरोध एवं विष्णु, इन्द्र आदि के सत्ता को चुनौती है। ब्राह्मणवादी ग्रन्थों के मुताबिक यज्ञ विरोधी असुर कहलाये महिषासुर के पिता रम्भासुर असुरों के राजा थे तथा माता श्यामला राजकुमारी थी। इस देश के मूल निवासी जिन्हें आर्यों ने साढ़े तीन हजार वर्ष पूर्व सिन्धु घाटी की सभ्यता को नष्ट कर हजारों वर्ष चले युद्ध में छल-कपट से परास्त कर असुर/अछूत/शूद्र आदि बनाकर सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक रूप से कमजोर एवं गुलाम बना लिया और इनके राजाओं एवं नायकों की हत्या कर असुर और राक्षस घोषित कर पुराण कथा में गढ़ डाला। मध्य एशिया, ईरान से आये आर्य भारत में यहाँ के मूल निवासियों के सत्ता और संस्कृति पर कब्जा के लिए लम्बे समय तक युद्ध किया और अनेकानेक पतित हथकंडों को अपना कर इस देश के निश्छल ईमानदार, कमेरे, हिंसा विरोधी, प्रकृतिप्रेमी, मूलनिवासियों (असुरों) को मारकर अपनी ब्राह्मणवादी हिंसक संस्कृति का बीजारोपण कर डाले।

मैंने महिषासुर को 'यादव' कहा है। मेरे ऐसा कहने पर प्रतिवाद होगा जो लाजमी है। लोग प्रमाण मांगेंगे और कहेंगे कि हम महिषासुर को 'यादव' कैसे मान लें? इस देश के सम्पूर्ण शूद्र, पिछड़ों, अन्त्यजनों-कमेरों, अर्जकों, या शोषितों का कोई इतिहास नहीं है। इन पच्चासी प्रतिशत के पिछली चार पीढ़ियों को यदि हम छोड़ दें तो शायद ही कोई व्यक्ति मिलेगा जो दावे के साथ कह सकेगा कि उसकी पिछली पांचवी पीढ़ी पढ़ी-लिखी थी। हम पिछड़ों को हजारों वर्ष से प्रचलित कथाओं, किंवदन्तियों, लक्षणों

एवं खुद से मिलते-जुलते नायकों के रूप, रंग, कार्य आदि को जोड़कर ही अपना इतिहास रचना है और मै इसी आधार पर महिषासुर को यादवों के करीब पाता हूँ। यादव का आशय दूध वाला, ग्वाला, भैंसपालक, पशुपालक है। यादव का मतलब पहलवान, गठीला रोबीला बहादुर, नतमस्तक न होने वाला लड़ाकू, सांवले व काले कद काठी का मूँछ रखने वाले रौबदार व्यक्ति से लगाया जाता है। मैं जब महिषासुर और यादवों के इन समानताओं में मेल देखता हूँ तो मुझे यह आभास होता है कि निश्चय ही महिषासुर यादवों के बहादुर पूर्वज रहे होंगे। इसी यादवी समानता के गुणों के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हँ कि असंख्य भैंसों को पालने के नाते इस बहादुर यादव राजा का नाम महिषासुर पड़ा होगा। महिषासुर को दुर्गा के हाथों क्यों मरवाया गया? जब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे तो ब्राह्मणी ग्रन्थों के मुताबिक अहिल्या का सतीत्व भंग करने वाला, सोमरस पीने एवं मधुपर्क खाने वाला, मेनका-उर्वशी नर्तकियों के नृत्यादि का भोग करने वाला आर्य-संस्कृति का पोषक इन्द्र जब महिषासुर से परास्त हो गया तो आर्य-संस्कृति के संरक्षक सुरों ने सुन्दरी दुर्गा को भेजकर महिषासुर की हत्या कर दी। सामान्य बुद्धि का व्यक्ति भी समझ सकता है कि जिस महिषासुर से इन्द्र एवं इन्द्र की विशाल सेना लड़ पाने में नाकाम रही उसे केवल और केवल एक स्त्री दुर्गा कैसे परास्त कर मार डालेगी? मैने महिषासुर के कृतित्व एवं व्यक्ति में समानता के आधार पर उसे यादव बताया है वहीं इतिहासकार डी.डी. कौशाम्बी ने अपनी पुस्तक "प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता" में लिखा है कि "जिन पशुपालक लोगों (गवलियों) ने इन वर्तमान देवों को स्थापित किया है, वे इन पुराने महापाषाणों के निर्माता नहीं थे, उन्होंने चट्टानों पर खांचे बनाकर महापाषाणों के अवशेषों का अपने पूजा स्थलों के लिए स्तूपनुमा शवाधानों के लिए सिर्फ पुनः उपयोग ही किया है। उनका पुरुष देवता म्हसोबा या इसी कोटि का कोई देवता बन गया, आरम्भ में पत्नी रहित था और कुछ समय के लिए खाद्य संकलनकर्ताओं की अधिक प्राचीन मातृदेवी से उसका संघर्ष भी चला। परन्तु जल्दी ही इन दोनों मानवसमूहों का एकीकरण हुआ और फलस्वरूप इनके देवी देवता का भी विवाह हो गया। कभी-कभी किसी ग्रामीण देव स्थल में महिषासुर-म्हसोबा को कुचलने वाली देवी का दृश्य दिखाई देता है तो ४०० मीटर की दूरी पर वही देवी, थोड़ा भिन्न नाम धारण करके, उसी म्हसोबा की पत्नी के रूप में दिखाई देती है। यही देवी ब्राह्मण धर्म में शिव पत्नी पार्वती के रूप में प्रकट हुई, जो महिषासुर मर्दिनी है। कभी-कभी यह पुराने रूप में लौटकर शिव का भी मर्दन करती है। इस सन्दर्भ में यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि सिन्धु सभ्यता की एक मुहर पर त्रिमुख वाले जिस आदि रूप शिव की आकृति उकेरी हुई है, उसके सिर के टोप पर भी भैंस के सींग हैं।'' (पृष्ठ-58) उक्त उद्धरण में गवलियों का नाम आया है। गवली और

यादव एक ही हैं। इस प्रकार इतिहासकार डी.डी.कौशम्बी ने महिषासुर या म्हसोबा को गवली या यादव माना है।

मैने आर्य और अनार्य की चर्चा की है। एक गोष्ठी में एक सजातीय पूर्व प्रधानाचार्य ने अपने सम्बोधन में मेरे पाखण्ड विरोधी तर्कों से सहमति जताते हुए कहा कि मै आर्यों के भारतीय न होने के तर्क से सहमत नहीं हूँ। भारत में हुई समस्त देव-दानव, देवासुर संग्राम, राम-रावण, वामन-बलि, हिरणाकश्यप-नरसिंह, महिषासुर-दुर्गा या इन्द्र-कृष्ण युद्ध, आर्य-अनार्य युद्ध ही हैं। चूंकि इतिहास आर्यों ने ही लिखा है। अनार्य शिक्षा से वंचित कर दिये गये थे। देश की पच्चासी प्रतिशत कमेरी अनार्य जनता मुगलों, अंग्रेजों आदि के आने के बाद ही शिक्षा का अधिकार पा सकी है। इसलिए महाभारत में गीता और कृष्ण को आर्य एवं चार वर्णों का रचनाकार बताया गया है तो वहीं ऋग्वेद में कृष्ण को (अनार्य) असुर बताते हुए इन्द्र के हाथों मरवाया गया है। एक ही लेखक वेदव्यास महाभारत में इन्द्र को कृष्ण के हाथों पराजित करता है और वही लेखक वेदव्यास ऋग्वेद में कृष्ण को असुर बताते हुए इन्द्र द्वारा चमड़ा छीलकर कृष्ण को मारने की बात लिखता है। आर्यों के सम्बन्ध में इतिहासकार भगवतशरण उपाध्याय ने अपनी पुस्तक "खून की छींटें इतिहास के पन्नों पर" में ब्राह्मण नामक अध्याय में लिखा है कि ऋग्वैदिक परम्परा में मै भारतीय नहीं हूँ जिस देश से प्राचीन ऋग्वैदिक आर्य भारत में आये थे, मै भी वहीं से आया था, क्योंकि मै ही उनका नेता उनका मंत्रदाता था। भारत में मैं (ब्राह्मण) भी अपनी शत्किम हिंस्त्र टोलिया लिये आया। मै चला तो भूख से आहार की तलाश में था परन्तु मेरा नारा था- "कृण्वंन्तं विश्वमार्यम्।" इसी तरह महानतम साहित्यकार आचार्य चतुरसेन ने अपनी पुस्तक "वयं रक्षामः" के अन्तिम पृष्ठ पर लिखा है कि "रावण का यह निधन ऐसा था जिसने सम्पूर्ण अनार्य बल तोड़ दिया था।" आचार्य चतुरसेन ने रावण को सप्तद्वीप पति बताते हुए लिखा है कि बदली भौगोलिक परिस्थितियों में आस्ट्रेलिया, जावा, सुमात्रा, मेडागास्कर, अफ्रीका आदि नाम से प्रसिद्ध देश उसके राज्य के हिस्सा थे। उन्होने लिखा है कि अनार्य राजा रावण की मृत्यु के बाद इस प्रकार आज के सब देशों में आर्य नेता-विजेता मर्यादा पुरुषोत्तम राम का किसी न किसी रूप में सांस्कृतिक मिश्रण है। आर्यों के सन्दर्भ में पंडित जवाहरलाल नेहरु ने अपनी पुस्तक "डिस्कवरी ऑफ इंडिया" में स्पष्ट लिखा है कि "भारतीय आर्य और ईरानी अलग होकर अपना-अपना रास्ता लेने से पहले एक ही नस्ल के थे। जाति की दृष्टि से तो दोनों एक थे ही परन्तु उनके पुराने धर्म और भाषा में भी समानता है। वैदिक और जरथ्रुस्त धर्म में बहुत सी बातें एक सी हैं और 'वेद' तथा 'अवेशता' दोनों एक दूसरे से मिलती जुलती हैं।" इस तरह से गैरभारतीय इतिहासकारों के अलावा इन भारतीय इतिहासकारों ने भी आर्यों को विदेशी स्वीकार किया है जिन्होने आक्रमण करके यहां के मूल निवासियों

पर वैदिक संस्कृति थोपकर अपनी राजसत्ता कायम की है।

मैं फिर मूल बिन्दु महिषासुर पर इन कुछ प्रमाणों के बाद आता हूँ। महिषासुर के समस्त लक्षण यादवों से मिलते हैं। हमें या इस देश के मूल निवासियों को अपना इतिहास गोताखोर बनके ढूढ़ना और तलाशना है। यह तलाश लम्बे समय तक चलेगा तब जाकर हमें वैदिक आर्य या ब्राह्मणवादी इतिहास से इतर अपना इतिहास ज्ञात हो सकेगा। अनार्य महापुरुष महिषासुर ने जब इन को परास्त किया तो आर्य खेमें में मायूसी छा गयी। यह मायूसी कैसी थी? यह मायूसी यज्ञ न कर पाने की थी। यज्ञ में क्या होता था? यज्ञ में लाखों गायों, बैलों, भैंसों, घोड़ों, भेड़ों, बकरों को काटकर आर्य लोग चावल मिश्रित मांस पकाकर मधुपर्क के रुप में खाते थे। सोमरस एवं मैरेय (उच्च कोटि का शराब) पीते थे। जौ, तिल, घी, आग में जलाते थे अनार्य पशुपालक एवं कृषक थे जबकि आर्य मुफ्तखोर थे जो अनार्यों से यह सब कुछ छीनने के लिए युद्ध करते थे। अनार्यों एवं आर्यों के बीच होने वाले इस युद्ध में अनार्यों को यज्ञ विरोधी घोषित कर राक्षस परिभाषित किया जाता था। आर्य सुरा सुन्दरी के सेवनहार थे। अप्सराएं रखना इनका शौक था। समस्त हिन्दू धर्मग्रन्थ जारकर्म को पुण्यकार्य घोषित करते हैं। सन्तान पैदा करने के लिए जारकर्म को नियोग विधि का जामा पहनाया गया। आर्य देवताओं ने परस्त्रीगमन को धर्मसंगत बताकर वृन्दा, अहिल्या, मच्छोदरी, कुन्ती सहित अन्यान्य स्त्रियों से बलात्कार एवं सम्भोग किया है। आर्य उपरोक्त कार्यों को वैदिक सनातन धर्म का आवश्यक अंग बताये तो अनार्यों ने इसके विरुद्ध महिषासुर, बलि, रावण, हिरण्यकश्यप, आदि के रुप में युद्ध किया जिन्हें इन आर्यों ने सीधी लड़ाई में परास्त करने के बजाय धोखे एवं छल से मारा जो इन्होने खुद द्वारा लिखी किताबो में स्वीकार किया है। महिषासुर से वर्षों लड़ने के बाद जब आर्य राजा इन्द्र परास्त कर पाने के बजाय परास्त होकर भाग खड़ा हुआ तो आर्यों ने 'छल' का सहारा लिया और आर्य कन्या दुर्गा को महिषासुर के पास भेजकर महिषासुर का दिल जीतकर उसे मारने की रणनीति बनाई। इसी रणनीति के तहत आर्य कन्या दुर्गा ने भिन्न मोहक रुपों एवं अदाओं से महिषासुर जैसे प्रतापी राजा को अपनी रणनीति के तहत फंसाया और दिल जीतकर एवं इतिहासकार डी. डी. कौशम्बी के मतानुसार गवलियों (यादवों) के पुरुष देवता महिषासुर एवं खाद्य संकलनकर्ताओं की मातृदेवी (दुर्गा) का विवाह हो गया। गवलियों से आशय यादवों एवं अनार्यों से है। जबकि खाद्य संकलनकर्ता से आशय आर्यों से है। इतिहासकार भगवत शरण उपाध्याय ने कहा है कि हम ब्राह्मण (आर्य) भारत भूख से आहार की तलाश में चले थे। इसी प्रक्रिया के तहत दुर्गा ने महिषासुर का विश्वास जीतकर महज दस दिनों में धोखे से मार ड़ाला। इस देश के मूल निवासी असुर यादव राजा के कुल खानदान, माता-पिता का नाम, ब्राह्मण एवं आर्य इतिहासकारों के ही मुताबिक ज्ञात है लेकिन आर्य इतिहास

में दुर्गा की उत्पत्ति बड़ी दिलचस्प है। दुर्गा के माता–पिता, कुल–खानदान का कोई अता–पता नहीं है। दुर्गा को शिव, यमराज, विष्णु, इन्द्र, चन्द्रमा, वरुण, पृथ्वी, सूर्य, ब्रह्मा वसुओं कुबेर, प्रजापति, अग्नि, सन्ध्या, एवं वायु आदि के विभिन्न अंशों से उत्पन्न कर अन्यान्य देवताओ से अस्त्र–शस्त्र दिलवाया गया है।

कोई धर्म भीरु अवैज्ञानिक सोच का व्यक्ति ही इन बातों को स्वीकार कर सकता है। दुर्गा पूजा का जोरदार चलन कोलकाता एवं पश्चिम बंगाल में है। मै १९७७ से १९८२ तक कोलकाता में ही रहा और पढ़ा हूँ। मैने कोलकाता का दुर्गापूजा बारीकी से देखा है। कोलकाता में दुर्गा प्रतिमा बनाने वाले कारीगर वेश्यालय से थोड़ी मिट्टी जरुर लाते हैं। इस प्रक्रिया का सजीव चित्रण "देवदास" फिल्म में भी किया गया है। वेश्याऐं दुर्गा को अपना कुल देवी मानती हैं। इसलिए दुर्गा प्रतिमा बनाने में वेश्यालयों से मिट्टी लाने का चलन है। असुर होने एवं आर्यों द्वारा इतिहास लिखने के बावजूद महिषासुर के कुल–खानदान का पता चलता है लेकिन आर्य पुत्री होने के बावजूद दुर्गा के कुल–खानदान का पता नहीं है। गुण एवं लक्षण के आधार पर मेरे जैसा दो–दो विषयों से परास्नातक शिक्षक महिषासुर को यादव मान रहा है तो निश्चय ही वेश्याओं द्वारा दुर्गा को कुल देवी मानने के पीछे एक बहुत बड़ा राज छिपा होगा जो सदियों से चला आ रहा है। दुर्गा और महिषासुर की गाथा आर्यों द्वारा हजारों वर्ष पूर्व छलपूर्वक अपनी संस्कृति थोपकर हमें गुलाम बनाने की कहानी का एक हिस्सा है जिस पर पढ़े–लिखे पिछड़े एवं दलितों को व्यापक पैमाने पर शोध करने की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए। परम्परावादी बनकर सड़ी लाश को कंधे पर ढ़ोने की बजाय उसे दफन कर एक नई सभ्यता और संस्कृति विकसित करनी चाहिए जो कमेरों की पक्षधर हो। मैं अपने कुल श्रेष्ठ महाबली महिषासुर की स्मृतियों के समक्ष नतमस्तक हूँ तथा उन तमाम साथियों, पत्रिकाओं, संस्थाओं को धन्यवाद देता हूँ जो अपना इतिहास ढूंढने, लिखने एवं जानने की दिशा में अग्रसर हैं। मै गाजियाबाद में फाइनआर्ट के डिग्री कॉलेज के शिक्षक श्री लाल रत्नाकर को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होने महाबली राजा महिषासुर का चित्र बनाया है जिसे 'फारवर्ड प्रेस' ने अक्टूबर माह के अंक में छापा है।

('यादव शक्ति' पत्रिका के जनवरी–मार्च, 2013 अंक से साभार, लेखक 'यादव शक्ति' पत्रिका के प्रधान संपादक हैं)

मो. 9415369430

महिषासुर का सच

–जितेंद्र यादव

बचपन में दुर्गा पूजा के पंडालों में भैंस पर सवार महिषासुर को देखकर अपनत्व महसूस होता था। पिछड़ी जाति बहुल हमारे गांव में महिषासुर जैसे कद–काठी के कई लोग थे, परंतु दुर्गा जैसी एक भी महिला देखने को नहीं मिली। पशुपालन के पारंपरिक पेशा के कारण भैंस से आत्मीय लगाव स्वाभाविक ही था। 'चारागाह' की तरफ अक्सर हम भैंस की पीठ पर चढ़ कर जाया करते थे। बाद में लालू प्रसाद को सवर्ण कार्टूनिस्टों द्वारा भैंस के साथ दिखाया जाना तथा भैंस के बच्चे 'पाड़ा' (भैंसा) को 'मुलायम' नाम दिया जाना समाज की जातीय पहचान को दर्शाता है। रेल मंत्री के रुप में लालू प्रसाद को रेल रुपी भैंस की सवारी वाला कार्टून आज भी सवर्ण मानसिकता को संतुष्ट करता है। जेएनयू में 'फारवर्ड प्रेस' में प्रेमकुमार मणि का लेख 'किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन' पढ़ने के बाद बचपन की स्मृतियां, कार्टून सब एक दूसरे से जुड़ने लगे और पता चला कि महिषासुर से पिछड़ों का पुराना रिश्ता है, वे हमारे पूर्वज हैं।

इतिहास में महिषासुर

महिषासुर बंग प्रदेश के राजा थे। बंग प्रदेश अर्थात् गंगा–यमुना के दोआब में बसा उपजाऊ मैदान जिसे आज बंगाल, बिहार, उड़ीसा और झारखंड के नाम से जाना जाता है। कृषि आधारित समाज में भूमि का वही महत्व था जो आज उर्जा के प्राकृतिक स्रोतों का है। बंग प्रदेश की उपजाऊ जमीनों पर अधिकार के लिए आर्यों ने कई बार हमले किए परंतु राजा महिषासुर की संगठित सेना से उन्हें पराजित होना पड़ा। 'बल नहीं तो छल, छल का बल।' महिषासुर की हत्या छल से एक सुंदर कन्या दुर्गा के द्वारा की गई। दुर्गा नौ दिनों तक महिषासुर के महल में रही और अंततः उनकी हत्या कर दी। इन नौ दिनों तक आर्यों के नेता जिन्हें देवता कहा जाता है, महिषासुर के किले के चारो तरफ जंगलों में भूखे–प्यासे छिपे रहे। यही कारण है कि दशहरा के दौरान आठ दिनों का व्रत–उपवास का प्रचलन है। सवर्णों द्वारा महिषासुर की हत्या को न्यायसंगत ठहराने के लिए तरह–तरह के कुतर्क गढ़े गए, उन्हें अत्याचारी, राक्षस आदि संबोधनों से अपने ही लोगों के बीच बदनाम किया गया। इस तरह अपनी जमीन, अपनी प्रजा और अपने राज्य की रक्षा के लिए राजा महिषासुर ने कुर्बानी दी।

असुर भारत के मूलनिवासी

संस्कृति और भाषा कैसे वर्चस्व स्थापित करती है, हिन्दू/आर्य/देव/ब्राम्हण संस्कृति इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। असुर/दैत्य/राक्षस आदि शब्दों में घृणा भरे गए, उनकी भयानक तस्वीरें गढ़ी गईं। जबकि ये शब्द ब्राम्हण संस्कृति के शब्दों के विपरीतार्थक हैं। 'असुर' अर्थात् जो 'सुर' नहीं है। जो देवता नहीं है वह दानव है। जो आर्य नहीं वह अनार्य है। जबकि अर्थ लगाया गया कि देवता अच्छे हैं और दानव खराब हैं। आर्य अच्छे हैं और अनार्य बुरे हैं। हिन्दू धर्म में जिन्हें राक्षस/असुर कहा जाता है वे दरअसल यहां के मूलनिवासी (पिछड़ा/दलित/ आदिवासी) हैं।

हिन्दू धर्मग्रंथ असुर और सुर की कहानियों से भरे पड़े हैं। इन सभी कहानियों में असुरों को बलशाली और सुखी-संपन्न दिखाया गया है। रावण की तो सोने की लंका ही थी। असुर अथवा कथित राक्षसों के चाल-चरित्र से लगता है कि वे लोग बेहद मानवीय थे। अपनी संपत्ति और अपनी जनता की सुरक्षा के लिए देवताओं/आर्यों से उनका संघर्ष था। असुरों ने किसी के साथ छल नहीं किया। इसके विपरीत देवता/सूर/आर्यों ने हमेशा इन्हें छला है। हिन्दू धर्मशास्त्रों में आर्यों की छलपूर्वक जीत की कहानियां भरी पड़ी हैं।

दरअसल अनार्य, जो यहां के मूल निवासी थे, के पास प्राकृतिक संसाधनों का अपार भंडार था, जिस पर आर्य कब्जा करना चाहते थे। कोई भी जाति जब किसी दूसरी जाति के संसाधनों पर कब्जा करना चाहती है तो पहले वह उसे बर्बर घोषित करती है। आज अमेरिका भी आतंकवाद के नाम पर इराक, अफगानिस्तान आदि मुल्कों पर प्राकृतिक संसाधनों के लिए घात लगाये हुए है। 'मुसलमान' शब्द को आज खौफ और घृणा का पर्याय बना दिया गया है। आर्यों ने भी यही किया। उन्होंने भी संसाधनों पर कब्जा के लिए महिषासुर की हत्या की। उनकी हत्या के बाद बंग प्रदेश के उपजाऊ भूमि पर आर्यों ने कब्जा कर लिया और यहां के मूलनिवासियों को गुलाम बना लिया। यह गुलामी आज तक चल रही है जिसके कारण मूलनिवासियों की हालत बद से बदतर है और वे आज भी सत्ता और संसाधनों से वंचित हैं।

महिषासुर को याद करते हुए हम इतिहास में अपने अस्तित्व की खोज कर रहे हैं। हम जानना चाहते हैं कि आखिर समुद्र मंथन के समय जो लोग शेषनाग (सांप) की मुंह की तरफ थे, जो हजारों की संख्या में मारे गए, उन्हें विष क्यों दे दिया गया? जो लोग पूंछ पकड़े रहे वे अमृत के हकदार कैसे हो गए? आजादी के आंदोलन को यदि समुद्र मंथन कहें और आजाद भारत के संसाधनों को अमृत, तो पिछड़ों के हिस्से में तो आज भी विष ही आया है। अमृत तो आज भी पूंछ पकड़ने वालों ने ही गटक लिया है। देश के सत्ता, संसाधनों और नौकरियों पर सवर्णों का ही कब्जा है।

महिषासुर-दुर्गा विवाद

2011 के दशहरा में **'ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम'** ने 'फारवर्ड प्रेस'

में प्रकाशित प्रेमकुमार मणि का लेख 'किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन' के माध्यम से जेएनयू छात्रों के बीच विमर्श के लिए 'महिषासुर के सच' को रखा। जेएनयू में जारी इस पोस्टर को लेकर संघी-सवर्ण छात्रों ने बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम के छात्रों के साथ मारपीट की। इस प्रकरण में जेएनयू प्रशासन ने ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम के अध्यक्ष जितेंद्र यादव को धार्मिक भावनाओं को आहत करने के आरोप में नोटिस जारी किया। बाद में देश के बुद्धिजीवियों, पत्रकारों और राजनेताओं के समर्थन और दबाव में जेएनयू प्रशासन ने एआईबीएसएफ से लिखित रूप में मांफी मांगी। प्रशासन ने कहा कि जितेंद्र यादव के खिलाफ कोई प्रॉक्टोरियल जांच नहीं चल रही है। जीत से उत्साहित पिछड़े वर्ग के छात्रों ने पहली बार 25 अक्टूबर 2011 को जेएनयू परिसर में 'महिषासुर शहादत दिवस' मनाया। यह कारवां लगातार बढ़ता जा रहा है और जनता में महिषासुर के प्रति हमारी सोच की व्यापक स्वीकृति मिल रही है। इस बार देश के 60 से अधिक जगहों पर महिषासुर शहादत दिवस का आयोजन इसका प्रमाण है। इस दशहरे पर मुजफ्फरपुर, बिहार के मीनापुर में श्री हरेन्द्र यादव द्वारा महिषासुर की मूर्ति लगाई जा रही है।

देश के विभिन्न हिस्सों में कई जातियां महिषासुर को अपना नायक मानती हैं। बंगाल के पुरुलिया जिले में महिषासुर की पूजा होती है और मेला लगता है। वहां के लोग महिषासुर को अपना पूर्वज मानते हैं। झारखंड में असुर जनजाति के लोग अपने को महिषासुर का वंशज मानते हैं। कवयित्री सुषमा असुर ने 'फारवर्ड प्रेस' के साथ साक्षात्कार में कहा था-'देखो! मैं महिषासुर की वंशज हूं।' झारखंड के पूर्व मुख्यमंत्री शिबू सोरेन भी महिषासुर को अपना पूर्वज मानते हैं। शिबू सोरेन ने रावण को अपना पूर्वज बताते हुए पुतला दहन से इनकार कर दिया था। मध्यप्रदेश की जनजातियां महिषासुर को अपना पूर्वज मानती हैं। **'यादव शक्ति'** पत्रिका ने भी दावा किया है कि महिषासुर पशुपालक जातियों के नायक थे। पत्रिका का आवरण कथा ही था-**'यदुवंश शिरोमणि महिषासुर।'**

हत्या का जश्न 'दशहरा' को प्रतिबंधित किया जाय

महिषासुर की हत्या का जश्न के रुप में मनाया जाने वाला दशहरा से मूलनिवासियों की भावनाएं आहत होती हैं। वैसे भी दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में किसी की हत्या का जश्न मनाना कहां तक जायज है? हम भारत के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और बात-बात पर संज्ञान लेने वाले न्यायपालिका से मांग करते हैं कि दशहरा पर रोक लगाई जाय। हम सामाजिक न्याय की पक्षधर शक्तियों से अपील करते हैं कि सांस्कृतिक आजादी के आंदोलन के लिए एकजुट हों!

मो. 9716839326

महिषासुर : मुक्ति के महाआख्यान की वापसी

–समर अनार्य

जलते हुए धैर्य के हथियार से लैस, प्रवेश करेंगे हम, शानदार शहरों में, सूर्योदय के वक्त!– आर्थर रिम्बौद

कई बार लगता है कि सुर्खियों में रहना जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय (जेएनयू) की नियति भी है और नीयत भी. उससे भी बेहतर यह कि यह नियति भाग्यवादी नियति नहीं बल्कि आतताई और आखेटक व्यवस्था के हथियारों को चुनौती देने का साहस और उससे ऊपजे हमलों को झेल सकने की जिजीविषा की नियति है. यह नीयत 'कहीं कोई विकल्प नहीं है' के उद्घोषों के दौर में प्रतिरोध के साथ-साथ संभावनाओं के नए प्रतिदर्श खड़े करने की नीयत है.

बखैर, इस बार सुर्खियों का सबब बना प्रख्यात चिन्तक और राजनीतिक कार्यकर्ता प्रेमकुमार मणि का लिखा और 'फॉरवर्ड प्रेस' पत्रिका में छपा आमुख लेख, जहाँ उन्होंने मिथकों के ब्राह्मणवादी पाठ को चुनौती देते हुए 'देवी दुर्गा' और 'महिषासुर' की कथा का एक वैकल्पिक और 'प्रातिरोधिक' पुनर्पाठ किया था. दशहरे के पर्व की सांस्कृतिक-ऐतिहासिक विवेचना करते हुए मणि जी का मूल निष्कर्ष था कि यह आर्य संस्कृति के अनार्यों के साथ छल के सफल होने का विजयपर्व है. उनके मुताबिक यह पर्व अपने मूल चरित्र में आर्यों के द्वारा अनार्य (बहुजन) राजा महिषासुर को कपट से मारकर आर्य सत्ता स्थापित करने के उत्सव पर्व से ज्यादा कुछ भी नहीं है. इस लेख में बंगाल और कुछ अन्य स्थानों पर वेश्याओं द्वारा दुर्गा को अपने 'कुल' का बताये जाने, और दुर्गा प्रतिमा के निर्माण में उनके घर की मिट्टी की प्रतीकात्मक 'अनिवार्यता' का जिक्र भी था.

ब्राह्मणवादी परम्पराओं को गहरी चुनौती देते हुए इस लेख के अंतिम हिस्से को जेएनयू में दलित-बहुजन हकों की लड़ाई के लिए प्रतिबद्ध अकेला छात्र संगठन 'ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम' (एआइबीएसएफ) ने बतौर अपनी रिलीज जारी करते हुए जेएनयू की दीवारों पर चस्पा कर दिया. गौरतलब है कि जेएनयू के इतिहास में तथाकथित विवादित मुद्दों पर आने वाला यह कोई पहला पैम्फलेट या परचा नहीं था

बल्कि जेएनयू की तारीख में इस किस्म के पर्चे प्रगतिशील और प्रतिगामी दोनों किस्म की राजनीतिक धाराओं से आते ही रहे हैं और इन पर्चों से पैदा हुई बहसों की तपिश ने जेएनयू की रवायतों को पैदा और मजबूत करने में अपनी बड़ी भूमिका निभाई है. यह और बात है कि दोनों तरफ के पर्चों में दृष्टि और स्वप्न का फर्क होना लाजमी है. मसलन जिक्र ही करें तो इसी जेएनयू में 'प्रोग्रेसिव स्टूडेंट्स युनियन' ने बाकायदा जुलूस निकाल कर विचारक मुद्राराक्षस और रमणिका गुप्ता की सदारत में 1992 में मनुस्मृति जलाई है तो प्रतिगामी खेमे की तरफ से 'काफिरों की मौत पर अल्लाह मुस्कुराया' जैसे घटिया पर्चे भी आये हैं.

पर एक बात सामान्य तौर पर साफ रही है कि जेएनयू ने इन बहसों को बहसों की शक्ल में लिया है, नयी राजनीतिक दृष्टि के, समानता और बराबरी के सपनों के प्रस्थान बिंदु के बतौर देखा है और जहाँ तक संभव हुआ है हिंसा को रोका है. यूँ भी, बहसें विश्वविद्यालयों में नहीं तो फिर कहाँ होंगी.

पर जेएनयू के छात्रों द्वारा लगातार खारिज की जाती और पीछे हटती हुई अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद(एबीवीपी) ने इस पर्चे में उसके अपने स्वार्थों के काम आने वाली ध्रुवीकरण की सम्भावनाओं को तलाश लिया. पूरे पर्चे की सांस्कृतिक-राजनैतिक दृष्टि को छोड़ते हुए उन्होंने दुर्गा को वेश्याओं द्वारा अपने कुल का बताये जाने वाले हिस्से को चुना और इसे हिन्दू भावनाओं को आहत करने वाला बताते हुए एआइबीएसएफ के पर्चे फाड़ने शुरु किये. साथ ही उन्होंने शुरु किया वह साम्प्रदायिक विषवमन जिसके लिए वह जाने जाते हैं, बस अंतर सिर्फ इतना था कि इस बार दुश्मन 'अन्य' मतलब 'अल्पसंख्यक' नहीं बल्कि उनके दावों के मुताबिक उनके 'अपने' लोग थे, वह लोग थे जिन्हें उन्होंने और उनकी राजनैतिक धारा ने हमेशा अपने शहीदी दस्तों की तरह इस्तेमाल करने की कोशिश की है. इसीलिये उन्हें यह भी समझ आ रहा था कि धार्मिक आधारों पर न होने वाला यह ध्रुवीकरण उनके काम तब तक नहीं आयेगा जब तक वह इसको कोई और रंग न दे दें. हाँ, ब्राह्मणवादी वर्चस्व की विचारधारा के इन समर्थकों के लिए यह परचा और इसे जारी करने का 'एआइबीएसएफ' का 'दुस्साहस' उनकी 4999 साल की सत्ता को चुनौती देने वाला और इसी लिए नाकाबिलेबर्दाश्त भी लगा. यह कहना शायद गैरजरुरी ही होगा कि प्रतिगामी मूल्यों के इन पहरुओं के पास तर्कों का जवाब हिंसा के सिवा कभी कुछ रहा नहीं.

उन्होंने हिंसा की भी. इस घटना के कुछ दिन बाद एआइबीएसएफ द्वारा निजी क्षेत्र में आरक्षण विषय पर आयोजित एक गोष्ठी के तुरंत बाद उन्होंने आयोजनकर्ताओं पर सुनियोजित हमला किया जिसमे एआइबीएसएफ के नेतृत्वकारी साथियों जितेंद्र यादव समेत कई अन्य कार्यकर्ता घायल हुए.

इस पूरे घटनाक्रम का बुरा पहलू बस इस हमले तक ही सीमित था. इस हमले के माध्यम से परिसर के साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की एबीवीपी की ख्वाहिशें जेएनयू के आम छात्रों और प्रगतिशील राजनैतिक संगठनों के सशक्त प्रतिरोध के सामने जमींदोज होकर रह गयीं. असफलता से ऊपजी बौखलाहट में फिर उन्होंने अगले दिन उनके द्वारा किये गए हमले के विरोध में आयोजित सामूहिक मेस कैम्पेन के साथियों को उत्तेजित कर एक और हिंसक झगड़े की सम्भावना तलाशी जो उन साथियों के असीम धैर्य और शांतिपूर्वक प्रतिरोध के सामने असफल हुई.

हाँ, इन दोनों हमलों ने आम छात्रों के अंदर इस हिंसक राजनीति के खिलाफ एक गुस्सा भर दिया जो विश्वविद्यालय प्रशासन पर दोषियों के खिलाफ कार्यवाही करने की मांग को लेकर हुए विशाल प्रदर्शन में नजर आया. इस प्रदर्शन में उमड़ी संख्या से भयभीत प्रशासन को दोषियों के खिलाफ कड़ी कार्यवाही करने का वादा करने पर मजबूर भी किया.

पर फिर, इस घटना के सामाजिक-राजनैतिक निहितार्थ ऐसी किसी भी कार्यवाही से कहीं बड़े हैं. यह निहितार्थ हैं मिथकों के, दावों के, परम्पराओं के पुनर्पाठ की कोशिशों के मजबूत होने के. इन कोशिशों से फिर इतिहास की गति निर्धारित होती है, उस इतिहास की जो हीगेल के मुताबिक 'स्वतंत्रता की चेतना के बढ़ते जाने का इतिहास' है. महिषासुर बनाम दुर्गा की इस लड़ाई ने और कुछ किया हो या न किया हो, कम-से-कम जेएनयू में न्याय के पक्ष में खड़े हर व्यक्ति को अपने इतिहास और अपनी परम्पराओं के अंदर के अन्याय से सीधी मुठभेड़ करने पर विवश किया है.

इस मुठभेड़ की परिणति हुई लॉर्ड मैकाले की जयन्ती की पूर्वसंध्या पर एआईबीएसएफ द्वारा आयोजित 'महिषासुर और मैकालेः एक पुनर्पाठ' गोष्ठी से. अबकी बार सुनने वाले भी काफी ज्यादा थे और वक्ताओं में शामिल थे ऑइवान कोस्टका, कंवल भारती, रमणिका गुप्ता, विकास चंद और कौशलेन्द्र प्रताप यादव. बातें तमाम हुईं पर मूल स्वर एक ही था, कि पराजित जातियों का पराजय का ही सही, एक इतिहास होता है और उसे वापस हासिल करना एक जरुरी कार्यवाही है. यह भी, कि बात मिथकों के मुकाबले मिथकों को खड़ा कर देने से आगे जानी चाहिए क्योंकि उत्तरआधुनिकता की सीमायें मुक्ति के महाआख्यान की संभावनाओं को क्षीण कर देती हैं.

यह गोष्ठी सन्देश भी है कि यथास्तिथिवादियों के हमले परिवर्तनकामियों को और मजबूत ही बनाते हैं, उनके अंदर उनके अपने नायकों, उनके अपने इतिहास की खोज की अदम्य जिजीविषा भर देते हैं. फिर सिर्फ महिषासुर नहीं बल्कि इतिहास से अब तक खारिज तमाम महानायकों की वापसी होती है और यह हर वापसी ब्राह्मणवाद की चिता में एक और लकड़ी का काम करती है.

यह सन्देश है कि अब आप महिषासुर को रोक नहीं पायेंगे, क्योंकि लगभग दो सदी पहले आप ज्योतिबा फुले को बलि राजा को वापस लाने से कहाँ रोक पाए थे. अब तमाम महिषासुर लौटेंगे आपके शहरों में,और असीम धैर्य के साथ छीन लेंगें आपसे अपना हक. यह जरुर है कि वह आपके साथ वैसा सलूक नहीं करेंगे जैसा आपने उनके साथ किया था, क्योंकि वह न्याय के हक में खड़े हैं.

('फारवर्ड प्रेस' के नवंबर, 2011 अंक से साभार)

दुर्गासप्तशी का असुर पाठ : एक सांस्कृतिक युद्ध की घोषणा

–अश्विनी कुमार पंकज

हम सबने मार्कण्डेय पुराण में वर्णित 'दुर्गासप्तशी' की कथा पढ़ी है, हिंदू समाज में सुनी है या फिर दुर्गा पूजा अथवा नवरात्रि के धार्मिक आयोजन से थोड़ा बहुत जरूर परिचित हैं. हम आपको एक एक मुण्डा आदिवासी कथा सुनाते हैं. कथा इस प्रकार है: जंगल में एक भैंस और भैंसा को एक नवजात बच्ची मिली. दोनों उसे अपने घर ले आए और लड़की को पालपोसकर बड़ा किया. अपूर्व सौंदर्य लिये हुए सोने की काया वाली वह बच्ची जवान हुई. उसके सोने-सी देह और अनुपम सौंदर्य की चर्चा कुछ शिकारियों के द्वारा राजा तक पहुंची. राजा ने छुपकर लड़की को देखा और उसके रूप पर मोहित हो गया. उसने उसका अपहरण करने की कोशिश की. तभी भैंस और भैंसा दोनों वहां आ गए. दोनों को आया देख राजा ने लड़की को बंधक बना लिया और घर का दरवाजा भीतर से बंद कर लिया. भैंस ने दरवाजा खोलने के लिए लड़की को बाहर से आवाज लगायी. लड़की बंधक थी. वह कैसे दरवाजा खोल पाती. उसने बिलखते हुए राजा से आग्रह किया कि वह उसे खोल दे. पर राजा ने लड़की को मुक्त नहीं किया. अंततः भैंस और भैंसा दोनों दरवाजा खोलने की कोशिश करने में सर पटकते-पटकते मर गए. उनके मर जाने के बाद राजा ने बलपूर्वक लड़की को अपनी रानी बना लिया.

आप सोचेंगे 'दुर्गासप्तशी' अथवा दुर्गा पूजा की कहानी जिसमें आदि शक्ति दुर्गा महिषासुर का वध करती है से इस आदिवासी कथा का क्या लेना-देना. इस पर बात करने से पहले एक और आदिवासी कथा का पाठ कर लेना उचित है. जिसे गैर-आदिवासी समाज नहीं जानता है. यह कथा संताल आदिवासी समाज में प्रचलित है. संतालों का एक पर्व है 'दासांय'. जो दुर्गापूजा के समय ही साथ-साथ चलता है. इसमें संताल नवयुवकों की टोली बनती है. जो योद्धाओं की पोशाक में लैश रहते हैं. टोली के आगे-आगे अगुआ के रूप में कोई संताल बुजुर्ग होता है, जो प्रत्येक घर घुसकर गुप्तचरी का स्वांग करता है. दरअसल यह टोली प्रत्येक घर में अपने सरदार को खोजते हैं जो उनसे बिछड़ गया है. इस तरह टोली युद्ध की मुद्रा में नृत्य करते हुए आगे बढ़ती है. इस संताल आदिवासी

परंपरा 'दासांय' में टोली जिस सरदार को खोजती है उसका नाम दुरगा होता है. जो अपने दिशोम (देश) में दिकुओं (बाहरी लोग) के अत्याचार और प्रभाव के खिलाफ अपने योद्धाओं के साथ युद्ध करता है. उसके बल और वीरता से दिकु पराजित हो भयभीत रहते हैं. अंत में दिकु लोग छल का सहारा लेते हैं. उसे धोखे से बंदी बनाकर उसकी हत्या करने के लिए एक वेश्या से सहायता मांगते हैं. वेश्या सवाल करती है, 'इसमें उसका क्या लाभ ?' तो फिर पुजारी वर्ग उसे आश्वस्त करते हैं कि अगर रूपजाल में फाँस कर वह दुरगा को बंदी बनाने में साथ देगी तो युगों-युगों तक उसकी पूजा होगी. इस तरह से संतालों का सरदार 'दुरगा' बंदी होता है और मार डाला जाता है. आदिवासी सरदार दुरगा को मारने के ही कारण उस वेश्या को महिषासुरमर्दिनी और दुरगा (दुर्गा) की उपाधि मिली. उसे मारने में नौ दिन और नौ रात लगे थे इसीलिए नवरात्रि का चलन शुरू हुआ. इस तरह से दुर्गा पूजा की शुरुआत हुई. बंगाल इसका केंद्र बना क्योंकि मूलतः संतालों की आबादी पुराने अंग-बंग से सटे इलाके अर्थात् मानभूम में निवास करती थी.इसी कारण दुर्गा प्रतिमा तभी बनती है जब वेश्यालय की एक मुट्ठी मिट्टी उस मिट्टी में मिलाई जाय, जिससे मूर्ति का निर्माण होना है.इस दूसरी आदिवासी कथा से आप पहली कथा, जिसमें जंगल, भैंस और सोने की काया वाली लड़की का रूपक है, आप समझ गये होंगे दुर्गा सप्तशी के साथ उसका क्या संबंध है. दरअसल ये दोनों कथाएं मनुवादी दुर्गा सप्तशी का आदिवासी पाठ है जिसे लोक कथा कह कर पुरोहित वर्ग ने व्यापक जन समाज के सामने आने नहीं दिया. सांस्कृतिक उपनिवेश बनाये रखने के लिए पुरोहित वर्ग और उसकी शिक्षा व्यवस्था ने लोक विश्वास को विश्वसनीय नहीं माना और असहमतियों एवं विरोध के इतिहास को लिखित वेद-पुराणों के तले दबा दिया.

सांस्कृतिक उपनिवेश की स्थापना सत्ता की प्राथमिकता होती है. दोहन, लूट और दमन का राज इसके बिना स्थायी नहीं किया जा सकता है. वाचिक काल में ही पुरोहितों और राजाओं को यह बात अच्छी तरह से समझ में आ गयी थी. वे समझ चुके थे कि स्मृतियों की सीमा है. व्यक्ति के नहीं रहने के साथ ही उसकी स्मृतियों का धीरे-धीरे या तो लोप हो जाता है या फिर वैसी ही प्रामाणिक नहीं रह जातीं जैसी कि वे वास्तव में थीं. इसीलिए वाचिक परंपरा की इस सीमा को समझते, उस पर अविश्वास करते हुए और उसको ध्वस्त करने के लिए उन्होंने दस्तावेजी परंपरा यानी लेखन की शुरुआत की. गुरु-शिष्य प्रणाली की नींव डाली. औद्योगिक काल में उपनिवेशों को अपने अनुकूल बनाने के लिए ज्ञान के प्रसार को शिक्षा व्यवस्था में जकड़ दिया. भारत जैसे पूर्वी विश्व में यह काम पौराणिक काल में मनुस्मृति के द्वारा संपन्न किया जा चुका था. जहां खास सामाजिक वर्गों में कानूनन ज्ञान के विस्तार और हस्तांतरण की मनाही थी. आधुनिक विश्व में मनुवाद को जस का तस रखकर मुठ्ठी भर लोगों की धनलोलुपता और आर्थिक

प्रगति के लिए समूची दुनिया की आबादी को नहीं हांका जा सकता था. इसलिए शिक्षा व्यवस्था को मनुवादी आधार पर कुछ यूं खड़ा किया गया कि चित भी मेरी पट भी मेरी. नतीजा है कि शिक्षा ने सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक भागीदारी के लिए श्रमशील सामाजिक वर्ग को उकसाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी. परंतु शिक्षा के मनुवादी कलेवर के चलते सांस्कृतिक उपनिवेश लगातार सुदृढ़ होता चला गया. यह सांस्कृतिक दासता का ही उदाहरण है कि देश के आदिवासी और विशेषकर मूलनिवासी मनुवाद के गुलाम हैं और दुर्गा पूजा, रावण वध जैसे धार्मिक परंपराओं से चिपके हुए हैं. इतिहास में हुए अपने ही श्रमशील समुदायों के जनसंहारों के मनुवादी उत्सवों में भागीदार हैं.

सांस्कृतिक उपनिवेश को कोई चुनौती नहीं मिले इसलिए आधुनिक इतिहास को आर्थिक संघर्षों का इतिहास बनाकर पेश किया गया. स्थापित किया गया कि दुनिया में जो भी इंसानी उपक्रम है वह मूलतः आर्थिक है. निश्चय ही बहुत हद तक यह बात सही है. परंतु सांस्कृतिक उपनिवेश का मामला भी इससे कमतर नहीं है. इतिहास में बुद्ध और उनके बाद नानक सरीखे लोग व सूफी परंपरा सांस्कृतिक उपनिवेशीकरण के खिलाफ हुए सांस्कृतिक संघर्ष के मजबूत अध्याय हैं. इतिहास हमें यह भी सबक देता है कि आर्थिक लड़ाइयों में सभी की दिलचस्पी है क्योंकि इस लड़ाई में 'असली दुश्मन' सुरक्षित रहते हैं. आर्थिक लड़ाइयों की चर्चा इसलिए भी सुर्खियां बटोरती रही हैं कि इसमें खून बहता है, लाशें दिखाई देती हैं और चीख-पुकार सुनाई पड़ती है. लेकिन सांस्कृतिक हमले बेआवाज होते हैं. इसमें चीख-पुकार की बजाय मंत्र, अजान और चर्च के घंटे सुनाई पड़ते हैं. आप कब सांस्कृतिक/मानसिक गुलाम हो जाते हैं और एक पूरा समुदाय कैसे खत्म हो जाता है, पता ही नहीं चलता है. इसीलिए वे चाहते हैं कि श्रमशील समाज महज आर्थिक लड़ाइयों तक सिमटे रहे और उनका सांस्कृतिक साम्राज्य बना रहे. बेशक रोटी, कपड़ा और मकान बुनियादी जरूरत है. लेकिन हम ये आर्थिक लड़ाई क्यों जीत कर भी हारते रहे हैं. इस पर गंभीरता से विचार करने और मनुवादी ग्रंथों के साथ-साथ शिक्षा प्रणाली के भी पुनर्पाठ की आवश्यकता है. सत्ता के एक पहलु पर ही चोट जब तक होती रहेगी उसका दूसरा पहलु जो विचार का है और जो आर्थिक से ज्यादा घातक है, जिसे वह धर्म के जरिए टिकाये हुए हैं, पर भी उसी दमखम से चोट करने की जरूरत है. वरना हम और सत्ता दोनों एक साथ धर्म (विचार) की आरती उतारते रहेंगे और सदा उनका 'राज' बना रहेगा.

पौराणिक युग में देवियों यानी आदि शक्ति के उभार पर डॉ. अंबेडकर ने महत्वपूर्ण सवाल उठाया है. उनकी मान्यता है कि वैदिक युग में सारे देव युद्ध करते हैं जो पुरुष हैं. उनकी पत्नियां युद्ध में नहीं जाती. लेकिन पौराणिक काल में जब सारे देवों का राज स्थापित हो जाता है और वे ही शासक होते हैं तब अचानक से हम उनकी देवी पत्नियों

को युद्ध में वीरांगना के रूप में पाते हैं. डॉ. अंबेडकर व्यंग्य करते हुए कहते हैं, 'ब्राह्मणों ने यह भी नहीं सोचा कि वह दुर्गा को ऐसी वीरांगना बनाकर जो अकेली सभी असुरों का मान मर्दन कर सके, वे अपने-अपने देवताओं को भयानक रूप से कायरता का जामा पहना रहे हैं. ऐसा लगता है कि वे पौराणिक देवता आत्मरक्षा तक नहीं कर सके और उन्हें अपनी पत्नियों से याचना करनी पड़ी कि वे आएं और उन्हें संरक्षण प्रदान करें. मार्कण्डेय पुराण में वर्णित एक घटना (महिषासुर वध) यह प्रकट करने के लिए पर्याप्त है कि ब्राह्मणों ने अपने देवताओं को कितना हिजड़ा बना दिया था. (डॉ. अम्बेडकर, हिंदू धर्म की रिडल, पृ. 75)

दुर्गा पूजा के बंगाली विस्तार का एक घृणित इतिहास भी है. अठारहवीं सदी के पहले बंगाल में भी दुर्गा पूजा की ऐसी कोई परंपरा नहीं थी जैसा कि आज हम पाते हैं. यह जानकर बहुत हिंदुओं को धक्का लगेगा कि दुर्गा पूजा का पहला आयोजन बंगाल में अंग्रेजी राज के विजयोत्सव के उपलक्ष्य में हुआ था. 1757 में. 23 जून 1757 को पलासी के युद्ध में बंगाल के नवाब को हराकर जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल पर अपना राज कायम कर लिया तो इसकी खुशी में राजा नवकृष्णा देव, जो क्लाइव का मित्र था, ने शोभाबाजार स्थित अपने घर के प्रांगण में दुर्गा पूजा का आयोजन किया. आज भी 36 नबकृष्णा स्ट्रीट में होनेवाले पूजा को बंगाली लोग 'कंपनी पूजा' के नाम से ही जानते हैं. इसके बाद ही बंगाल के जमींदारों ने दुर्गा पूजा को अपने 'ठाकुर दालान' और अपनी-अपनी जमींदारियों में आयोजित करना शुरू किया. दुर्गा पूजा के इस आयोजन में धार्मिक विद्वेष स्पष्टतः मौजूद था और है, इसे भी नहीं भूलना चाहिए. ईस्ट इंडिया कंपनी ने पलासी के युद्ध में जिस नवाब को हराया था वह मुसलमान था-नवाब सिराजुद्दौला। ईस्ट इंडिया कंपनी से लड़नेवाला सिराजुद्दौला देशभक्त नहीं है भारतीय इतिहास में. क्योंकि वह मुस्लिम है. लेकिन जिन बंगाली राजाओं और जमींदारों ने ईस्ट इंडिया कंपनी की आराधना की वे बंगाली पुनर्जागरण के अग्रदूत माने गए. संहार का यह नस्लीय आयोजन हमें बताता है कि हजारों साल पहले असुरों को दुर्गा ने छल से मारा. बंगालियों ने 450 वर्ष पहले मुसलमानों के खिलाफ और ईस्ट इंडिया कंपनी की आराधना में फिर से दुर्गा को जीवित किया. और आजादी के बाद भारत सरकार व हिंदू समाज ने विकास एवं औद्योगिकीकरण की आड़ में आदिवासी इलाकों में दुर्गा पूजा का विस्तार करते हुए आदिवासियों का सांस्कृतिक संहार आज भी जारी रखा है.

आधुनिक विश्व और भारत को अब यह समझ लेना चाहिए कि किसी भी समाज-देश को इकहरी कहानियों से चलाना खतरनाक है. लोकतंत्र में सबकी कहानियों को सुनने का धैर्य होना चाहिए. हजारों वर्षों से एक नस्लीय दंभ, वर्चस्व की कहानी सुनायी जा रही है. सभी सुन रहे हैं और दूसरों को सुनने के लिए लगातार दबाव भी

डाला जा रहा है. इतिहास, शिक्षा, साहित्य, फिल्म, मीडिया और धार्मिक-सांस्कृतिक आयोजनों के जरिए. यह किसी भी रूप में सामाजिक न्याय की आकांक्षा के अनुकूल नहीं है.

सांस्कृतिक उपनिवेशों का खात्मा प्राथमिक होना चाहिए. बुद्ध इसके सबसे बड़े अगुआ हैं. उन्होंने कोई आर्थिक आंदोलन नहीं चलाया. बुद्ध ने ब्राह्मणवादी धर्म-संस्कृति के आधारों पर सीधी चोट की. एक नई वैचारिकी वाली संस्कृति दी दुनिया को और पूरी दुनिया बौद्ध हो गई. हमारे देश का ब्राह्मणवाद और उसका सच्चा मित्र धनलोलुपवाद दोनों इसीलिए आर्थिक सवालों पर अंततः समझौते के लिए तैयार भी हो जाता है. पर संस्कृति के मामले में वह एक कदम पीछे हटने को भी तैयार नहीं होता है. धर्म, जाति, भाषा, स्त्री आदि सांस्कृतिक सवाल आप जैसे ही सवाल उठाये जाते हैं आर्थिक मोर्चों पर साथ साथ खड़े ब्राह्मणवादी वर्ग तुरंत तलवार निकालकर टूट पड़ते हैं. इसलिए आर्थिक लड़ाइयां जरूरी हैं पर निर्णायक संघर्ष सांस्कृतिक मोर्चे पर ही है.

राहुल सांकृत्यायन कहते हैं, 'मजहब तो है सिखाता आपस में बैर रखना. भाई को है सिखाता भाई का खून पीना. उत्पीड़ित अवाम की एकता मजहबों के मेल पर नहीं होगी, बल्कि मजहबों की चिता पर होगी. मजहबों की बीमारी स्वाभाविक है. उसको मौत छोड़ कर इलाज नहीं. (राहुल सांकृत्यायन, 'तुम्हारी क्षय' से)

(कहानीकार व कवि अश्विनी कुमार पंकज पाक्षिक बहुभाषी आदिवासी अखबार 'जोहार दिसुम खबर' तथा रंगमंच प्रदशर्नी कलाओं की त्रैमासिक पत्रिका 'रंग वार्ता' के संपादक हैं।)

महिषासुरः ब्राह्मणवादी संस्कृति के प्रतिकार का बढ़ता कारवां

–अरुण कुमार

'महिषासुर' का मिथक बहुजन नायक के रूप में देश के विभिन्न हिस्सों में विमर्श के केन्द्र में है। इस वर्ष से उत्तर भारत के कई क्षेत्रों में महिषासुर की शहादत पर नये आयोजन आरंभ हो रहे हैं, जिनका मुख्य उद्देश्य पिछड़े व आदिवासी समाज के लोगों को यह बताना है कि महिषासुर इस देश के बहुजन समुदाय के न्यायप्रिय राजा थे, जिनकी दुर्गा द्वारा छलपूर्वक हत्या की गयी थी। ज्ञातव्य है कि महिषासुर को लेकर बहुजनों के बीच दो तरह के मत हैं। एक धड़ा मासिक पत्रिका 'फारवर्ड प्रेस' के अक्टूबर, २०११ अंक में प्रकाशित प्रेमकुमार मणि द्वारा लिखित आवरण कथा 'किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन?' के आधार पर मानता है कि महिषासुर गौवंश पालक समुदाय के राजा थे, जबकि दूसरा धड़ा उन्हें असुर जनजाति से जोड़ते हुए आदिवासी समाज का राजा बताता है। 'फारवर्ड प्रेस' से पूर्व 'यादव शक्ति' पत्रिका ने भी इस विषय पर एक लंबा लेख प्रकाशित किया था, जिसमें महिषासुर को यादव राजा बताया गया था। लंबे समय तक अलक्षित रहने के बाद अब वह लेख भी इन दिनों चर्चा में है।

बहरहाल, इस वर्ष बिहार के कई जिलों में महिषासुर शहादत दिवस मनाया जा रहा है। दशहरा के दौरान ही मुजफ्फरपुर जिला के मीनापुर में महिषासुर की आदमकद मूर्ति लगा कर यह सामारोह मनाया जाएगा। समारोह के संयोजक हरेन्द्र यादव ने बताया कि 'जब लोग वर्षों से चली आ रही उनकी झूठी परंपराओं के तहत दुर्गा पूजा में शामिल होंगे उसी समय हम लोग भी अपने नायक महिषासुर की सच्चाई जानने के लिए इकट्ठा होंगे।' बिहार के ही नवादा में २३ अक्टूबर को महिषासुर शहादत दिवस मनाया जाएगा। कार्यक्रम के संयोजक रामफल पंडित ने कहा कि 'नवादा यादव बहुल क्षेत्र है और यदि हम यहां के यादवों को सच्चाई बताने में सफल हुए तो यह बहुजन सांस्कृतिक आंदोलन की बड़ी जीत होगी। ऐसा कैसे हो सकता है कि एक जाति अपने ही नायक की छलपूर्वक की गई हत्या के जश्न मनाए'? पटना में बहुजन समाज को महिषासुर के संदर्भ में जागृत

करने का जिम्मा समाजसेवी उदयन राय ने उठाया है। उदयन राय कहते हैं कि 'मेरे घर के पास ही दुर्गा पूजा का आयोजन होता है जिसमें हमारे लोग शामिल होते हैं, इस बार हम लोगों को सच्चाई से अवगत कराएंगे।'

गिरीडीह (झारखंड) में 'प्रबुद्ध यादव संगम' द्वारा १२ अक्टूबर से १७ अक्टूबर तक 'महिषासुर शहादत सप्ताह' मनाया जाएगा। आयोजक दामोदर गोप ने बताया कि 'पूरे गिरीडीह में जनजागरण अभियान की शुरुआत की जा रही है। महिषासुर की शहादत को लोकगीतों द्वारा प्रस्तुत किया जाएगा।'

उड़ीसा के कालाहांडी में नारायण बगर्थी तो पश्चिम बंगाल के माला वर्मा और डॉ. दिनेश सिंह तथा पूरुलिया में 'पंचकूट महाराज' मंदिर के पास भेला घोड़ा गांव में नवमी के दिन महिषासुर शहादत दिवस मनाया जाएगा। जेएनयू, नई दिल्ली में लगातार तीसरी बार आगामी १७ अक्टूबर को महिषासुर शहादत दिवस पर राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन 'ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम' द्वारा किया जा रहा है। संगठन के राष्ट्रीय अध्यक्ष जितेंद्र यादव ने बताया कि इस बार सम्मेलन का विषय 'बहुजन संस्कृति और हिन्दू परंपराएं' है। सम्मेलन में प्रेमकुमार मणि और कांचा आयलैया, गेल ऑम्वेट समेत देश के अनेक बुद्धिजीवी, पत्रकार एवं सामाजिक कार्यकर्ता शामिल होंगे।

उत्तर प्रदेश के कई जिलों में भी 'यादव शक्ति' पत्रिका अन्य सामाजिक संगठनों के साथ मिलकर इस दशहरा में बड़े पैमाने पर महिषासुर शहादत दिवस का आयोजन कर रहा है। पत्रिका के संपादक राजवीर सिंह ने कहा कि 'शुरुआत में ऐसा लगता था कि लोग महिषासुर को इतनी आसानी से स्वीकार नहीं करेंगे। तीन हजार वर्षों से महिषासुर के प्रति नफरत का जो बीज बोया गया है, उसे आसानी से उखाड़ा नहीं जा सकता लेकिन जैसे-जैसे हम लोगों को बता रहे हैं, लोग आश्चर्यजनक ढंग से बहुत जल्दी ही हमारी बातें मान ले रहे हैं।' उत्तरप्रदेश में इस बार कौशाम्बी जिले में डॉ. अशोक वर्द्धन, हरदोई में भिक्षु प्रियदर्शी, सीतापुर में राजवीर सिंह और देवरिया में चंद्रभूषण सिंह यादव द्वारा महिषासुर शहादत दिवस का आयोजन किया जा रहा है।

गौरतलब है कि महिषासुर शहादत दिवस पर आयोजन की शुरुआत वर्ष 2011 में जेएनयू में फारवर्ड प्रेस के अक्टूबर, 2011 अंक में छपी प्रेमकुमार मणि द्वारा लिखित आवरण कथा 'किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन?' के प्रभाव में हुई थी. आलेख में दुर्गा और महिषासुर के मिथक की बहुजन परिप्रेक्ष्य में व्याख्या करते हुए बताया गया था कि महिषासुर बहुजन तबके के राजा थे, जिनका वध दुर्गा ने छलपूर्वक किया था। उस वर्ष इस लेख का पक्ष लेने पर जेएनयू में ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम से जुड़े छात्र-छात्राओं के साथ दक्षिणपंथी संगठनों के छात्रों ने विश्वविद्यालय परिसर में मारपीट की थी। उसके बाद से यह आयोजन देश के विभिन्न हिस्सों में फैलता जा रहा है। महिषासुर

शहादत दिवस आयोजन की बढ़त को देखते हुए यह उम्मीद की जा सकती है कि आने वाले वर्षों में यह उत्तर भारत में ब्राह्मणवादी संस्कृति के प्रतिकार के प्रमुख सांस्कृतिक हथियार के रूप में उभर सकता है, लेकिन बहुजन बुद्धिजीवियों के सामने इसे हिंदुवादी कर्मकांडों से बचा कर रखना एक बड़ी चुनौती होगी। देखना यह है कि वे इस चुनौती से कैसे निपटते हैं?

(ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम के राष्ट्रीय संयोजक अरुण कुमार विभिन्न पत्र-पत्रिकओं में समकालीन विषयों पर लिखते हैं। यह लेख 'फारवर्ड प्रेस' के अक्टूबर, 2013 अंक से साभार)

मो. 9430083588

असुर होने पर मुझे गर्व है

–शिबू सोरेन

'हम आदिवासी भारत के मूलनिवासी हैं। बाहर से आए सभी ने हमारा हक छीना है। हमें अपने अधिकारों से वंचित रखने के लिए तरह-तरह के पाखंड किए गए। हमें जंगली तो कहा ही गया, हमें तो इंसान भी नहीं माना गया। खासकर हिन्दू धर्मग्रंथों में तो हमारे लिए असुर शब्द का इस्तेमाल किया गया। लेकिन मुझे गर्व है कि मैं असुर हूं और मुझे अपनी धरती से प्यार है।'

फोन पर झारखंड के पूर्व मुख्यमंत्री 68 वर्षीय शिबू सोरेन की आवाज बहुत स्पष्ट सुनाई नहीं देती। उम्र अधिक होने और अस्वस्थ होने की वजह से वे और अधिक बात नहीं कर पाते। लेकिन जब 'फॉरवर्ड प्रेस' के उप संपादक नवल किशोर कुमार ने उनसे फोन पर बात की तो उन्होंने अत्यंत ही सहज तरीके से रावण को अपना कुलगुरु बताया।

दिशोम गुरु (यानी देश का गुरु) का दर्जा प्राप्त कर चुके शिबू सोरेन बताते हैं कि जब बचपन में वे रावणवध और महिषासुरमर्दिनी दुर्गा के बारे में सुनते थे, तब अजीब सा लगता था। अजीब लगने की वजह यह थी कि महिषासुर और उसकी वेशभूषा बिल्कुल हमलोगों के जैसी थी। वह हमारी तरह ही जंगलों में रहता था। भैंसें चराता था। शिकार करता था। फिर एक सवाल जो मुझे परेशान करता था, वह यह कि आखिर देवताओं को हम असुरों के साथ युद्ध क्यों लड़ना पड़ा होगा। फिर जब और बड़ा हुआ तो सारी बात समझ में आई कि यह सब अभिजात्य वर्ग की साजिश थी, हमारे जल, जंगल और जमीन पर अधिकार करने के लिए।

श्री शिबू सोरेन कहते हैं कि जब उन्हें वर्ष 2005 में झारखंड का मुख्यमंत्री बनने का पहला मौका मिला तब उन्होंने झारखंड में रहने वाली 'असुर' जाति के लोगों के कल्याण के लिए एक विशेष सर्वे कराने की योजना बनाई थी। इसका उद्देश्य यह था कि विलुप्त हो रहे इस जाति को बचाया जा सके और इन्हें समाज की मुख्य धारा में जोड़ा जा सके। इनका यह भी कहना है कि वर्ष 2008 में दूसरी बार मुख्यमंत्री बनने पर भी मैंने इस दिशा में एक ठोस नीति बनाने की पहली की। लेकिन ऐसा नहीं हो सका। बहरहाल, श्री सोरेन चाहते हैं कि आज की युवा पीढ़ी अभिजात्यों द्वारा फैलाए गये अंधविश्वास की सच्चाई को समझे और नए समाज के निर्माण में योगदान दें।

(फारवर्ड प्रेस के अक्टूबर, 2012 अंक से साभार)

ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंटस फोरम द्वारा जारी कुछ प्रेस नोट्स

जेएनयू , 19 अक्टूबर 2012 : दिल्ली स्थित जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) में ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम के बैनर तले 29 अक्टूबर 2012 आश्विन पूर्णिमा के दिन महिषासुर शहादत दिवस मनाया जाएगा. संगठन द्वारा जेएनयू कैंपस में इस संबंध में एक पोस्टर जारी कर दिया गया है.

जेएनयू कैंपस में एआईबीएसएफ द्वारा लगाये गये बड़े-बड़े पोस्टर में कहा गया है कि महिषासुर इस देश के बैकवर्ड समाज के नायक थे जिनकी हत्या आर्यों ने दुर्गा के माध्यम से की. पोस्टर के पहले पेज पर झारखंड की 'असुर' जनजाति की कवियित्री सुषमा असुर का फोटो यह कहते हुए दिया गया है कि 'देखो मुझे महाप्रतापी महिषासुर की वंशज हूं मैं'.

पोस्टर के एक अंश में अकादमिक पत्रिका 'फारवर्ड प्रेस' में प्रकाशित झारखंड के वरिष्ठ नेता व पूर्व मुख्यममंत्री शिबू सोरेन से बातचीत दी गयी है. शिबू सोरेन ने महिषासुर को अपना पूर्वज बताते हुए कहा है कि मुझे 'असुर होने पर गर्व है'.पोस्टर के माध्यम से कहा गया है कि 'फॉरवर्ड प्रेस' के अक्टूबर, 2012 अंक में प्रकाशित आवरण कथा में आदिवासी मामलों के विख्यात अध्येता अश्विनी कुमार पंकज ने दशहरा को असुर राजा महिषासुर और उसके अनुयायियों के आर्यों द्वारा वध और सामूहिक नरसंहार का अनुष्ठान बताया है इसलिए भारत के बहुजनों को दुर्गा की पूजा का विरोध करना चाहिए। संगठन ने कहा है कि विजयादशमी को राष्ट्रीय शर्म के रुप में घोषित करने के लिए आंदोलन किया जाएगा क्योंकि यह हमारे पूर्वजों के हत्याओं का जश्न है।

एआईबीएसएफ के राष्ट्रीय अध्यक्ष जितेंद्र यादव का कहना है कि राजा महिषासुर की हत्या के बाद पूर्णिमा की रात को असुरों ने शोक सभा की थी. इसलिए संगठन देश भर में इस दिन (शरद पूर्णिमा) को शहादत दिवस के रुप में मनाएगा.

गौरतलब है कि पिछले वर्ष जेएनयू में महिषासुर-दुर्गा पोस्टर के कारण 'बैकवर्ड फोरम' और 'विद्यार्थी परिषद' के छात्रों से हुई मार-पीट और मुकदमेबाजी हुई थी. इस संबंध में जेएनयू प्रशासन ने संगठन के जितेंद्र यादव को धार्मिक भावनाओं को आहत

करने के कारण नोटिस जारी किया था जिसके कारण यह मामला और तूल पकड़ लिया था. परंतु अंततः विश्वविद्यालय प्रशासन को इस मामले में माफी मांगनी पड़ी थी. इस अवसर पर 'युद्धरत आम आदमी' पत्रिका की संपादक व आदिवासी मामलों पर काम करने वाली लेखिका रमणिका गुप्ता, बिहार के चर्चित साहित्यकार प्रेमकुमार मणि समेत बैकवर्ड समाज के जाने-माने बुद्धिजीवी और पत्रकार उपस्थित रहेंगे.

– जितेंद्र यादव, राष्ट्रीय अध्यक्ष, एआईबीएसएफ

हिंदुत्ववादियों ने महिषासुर शहादत दिवस के पोस्टर फाड़े

नई दिल्ली, 23 अक्टूरबर, 2012। नई दिल्ली के प्रतिष्ठित जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय में महिषासुर शहादत दिवस के आयोजन को लेकर तनाव का माहौल बनने लगा है। ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम द्वारा लगाये गये कुछ पोस्ट फाड़ दिया गये। पोस्टर में संगठन ने महिषासुर को भारत के आदिवासियों, दलितों और पिछड़ों का पूर्वज बताते हुए 29 अक्टूबर (शरद पूर्णिमा) को उनकी शहादत मनाने के लिए एकजुट होने का आह्वान किया था।

ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम के राष्ट्रीय अध्यक्ष जितेंद्र यादव ने बताया कि तीन दिन पहले कैंपस में इससे संबंधित 30 बड़े पोस्टर विभिन्न स्थानों पर लगाये गये थे। इन पोस्टरों में अकादमिक जगत की प्रतिष्ठित पत्रिका 'फारवर्ड प्रेस' में प्रकाशित कवर स्टोरी को दर्शाया गया था, जिसके अनुसार 'असुर' एक जनजाति है, जो आज भी झारखंड में पायी जाती है।

छात्र नेताओं के अनुसार, संगठन के सदस्यों ने उन स्थानों पर, जहां पोस्टर लगाये गये थे, का मुआयना करने पर पाया कि लाइब्रेरी के सामने व केसी मार्केट कंप्लेक्स में लगाये गये पोस्टर फाड़ दिये गये हैं। संगठन यह मुद्दा जेएनयूएसयू व विश्वविद्यालय प्रशासन के सामने उठाएगा।

उन्होंने आरोप लगाया कि पोस्टर दक्षिणपंथी-हिंदूवादी राजनीति से जुड़े असमाजिक तत्वों ने फाड़े हैं।

छात्र नेताओं ने बताया कि कैंपस में महिषासुर शहादत दिवस मनाने की तैयारी जोरों पर चल रही है। ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम की बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी शाखा भी स्थानीय स्तर पर बीएचयू में शहादत दिवस का आयोजन करेगी जबकि लखनऊ यूनिवर्सिटी व भीमराव अंबेदकर यूनिवर्सिटी मुजफ्फरपुर, बिहार के विद्यार्थी बड़ी संख्या में शहादत दिवस में भाग लेने 29 अक्टूबर को जेएनयू आएंगे। उन्होंने कहा कि महिषासुर शहादत दिवस भारत के बहुजनों के सांस्कृतिक आजादी की लड़ाई है, अपनी जड़ों की ओर लौटना है तथा अपने पूर्वजों के प्रति सम्मान व्यक्त करना है।

– जितेंद्र यादव, राष्ट्रीय अध्यक्ष, एआईबीएसएफ

'यादव शक्ति' पत्रिका के संपादक का पत्र

सम्माननीय जितेंद्र यादव जी,

(अध्यक्ष- ऑल इण्डिया बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम-जेएनयू)

सादर अभिवादन।

साप्ताहिक-'शुक्रवार' 21 से 27 अक्टूबर 2011 में आपका साक्षात्कार पढ़ा। आपके साहस और जज्बे को मेरा क्रांतिकारी सलाम है कि आपने देश की राजधानी में मनुवादियों की छाती पर यथार्थ का झंडा बुलंद किया है।

समाजवादी राजा रावण, पाखंडविरोधी हिरण्यकश्यप एवं होलिका, महाबलि महिषासुर, निश्छल राजा बलि, असुर नायक कृष्ण, समतावादी शिव आदि इस देश के मूल निवासियों के महापुरुष हैं। इन्हें विदेशी आर्यों ने अपने छल-कपट से या तो मार डाला या इन्हें साहित्यिक एवं सांस्कृतिक रुप से अपने में समाहित कर लिया। चूंकि इतिहास लिखने का काम आर्यों (सवर्णों) ने किया तथा हमसे शिक्षा छीनकर इसे खुद के लिए अरक्षित कर हमारे हाथों में डंडा, फावड़ा, हथौड़ा, हल, हंसुआ, टोकरी थमाकर खुद के हाथों में कलम एवं किताब ले लिया। इन्होंने जो जैसा लिखा है, हम वह, वैसा ही पढ़ रहे हैं। तर्क नहीं करते हैं, अपना इतिहास नहीं ढूंढते हैं और यदि कोई यथार्थ बताता है तो उपहास उड़ाते हैं। इसलिए हम उन्हें ही पूज रहे हैं जिन्होंने हमारे पुरखों को मारकर हमसे राजपाठ, शिक्षा, छीन लिया है। पढ़ा-लिखा पिछड़ा क्षत्रिय बनने पर आमादा है। जबकि हमें इस देश का निवासी, अनार्य, अवर्ण, शूद्र होने पर गर्व महसूस करना चाहिए। विदेशी आर्यों ने चार वर्ण बनाया था जिसमें ब्राम्हण को पढ़ना-पढ़ाना, क्षत्रिय को राज्य करना एवं युद्ध करना, तथा वैश्य (मारवाड़ी) को व्यापार का कार्य निश्चित कर शेष सम्पूर्ण भारतवासियों मूलनिवासियों को अछूत-सछूत-शूद्र बनाकर सेवा एवं श्रम का कार्य दे दिया था। हम बलात् क्षत्रिय बनने पर आमादा हैं। आर्य रचित ग्रंथों एवं तथाकथित भगवानों को ही अपना हितैषी मानकर उन्हें हम धूम-धाम से पूज रहे हैं। किसी आर्य ग्रंथ मसलन वेद, पुराण, वाल्मिकी रामायण, रामचरित मानस को खुद पढ़े बिना ही, दूसरों के कहेनुसार हम इस पर आस्थावान हैं। चालाकी से लिखे गये ग्रंथों को यदि पिछड़ा वर्ग पढ़ ले तो वह बिना कहे इन कथित भगवानों से घृणा करने लगेगा।

अभी 6.1.2011 के 'हिन्दुस्तान' अखबार में सुप्रीम कोर्ट के माननीय जस्टिस श्री मारकन्डेय काटजू एवं ज्ञान सुधा मिश्रा का एक निर्णय छपा था जिसमें न्यायमूर्ति ने कहा था कि देश के मूल निवासियों को असुर एवं राक्षस कह कर मारा गया है और आज भी इनका उत्पीड़न जारी है। न्यायमूर्ति ने द्रोणाचार्य द्वारा एकलव्य का अंगूठा लेने को (गुरुदक्षिणा में) भी सरासर अन्याय बताया है।

इस तरह सुप्रीम कोर्ट ने भी असुरों को इस देश का मूल निवासी माना है। हमारी 'यादव शक्ति' पत्रिका ने भी अप्रैल-जून 2011 के अंक में नरेन्द्र यादव का एक लेख-'यदुवंश शिरोमणि-महिषासुर' प्रकाशित किया था। इतिहासकार श्री डी. डी. कौशाम्बी ने 'प्राचीन भारत की सभ्यता और संस्कृति' के पृष्ठ संख्या 58 पर महिषासुर को दक्षिण का गवली (यादव) दर्शाया है।

सम्माननीय जितेंद्र जी आपने जितनी निर्भिकता से महिषासुर को अपना कुलपुरुष उनके शहादत दिवस मनाने का कार्य किया है, वह काबिले तारीफ है। आपके संदर्भ में यही कहूंगा कि-

'लीक-लीक गाड़ी चले, लीखी चले कपूत। लीक छोड़ तीनों चले, शायर, सिंह, सपूत।।'

एक योग्य सपूत के रुप में भाई जितेंद्र जी आपने जो ऐतिहासिक कार्य किया है उस पर दुष्यंत कुमार की यह पंक्ति सटीक बैठती है कि-

'कौन कहता है आसमां में सूराख नहीं हो सकता,
जरा तबियत से एक पत्थर तो उछालो यारों।

आप द्वारा उछाला गया पत्थर निश्चित ही सुराख करेगा तथा इस देश के अर्जक, कमेरों, मूलनिवासियों एवं श्रमण लोगों को चैतन्य बनायेगा। आपका मन-मस्तिष्क और मजबूत हो तथा ऐसे ही अपने समाज को सजग बनाने हेतु आप प्रयत्नशील रहें, यही कामना है।

क्रांतिकारी अभिवादन के साथ-

चन्द्र भूषण सिंह यादव

26.10.2011

(चंद्रभूषण सिंह यादव 'यादव शक्ति' पत्रिका के प्रधान संपादक हैं)

Move to observe 'Mahishasur Day' on JNU campus

EXPRESS NEWS SERVICE
NEW DELHI, OCTOBER 23

DESPITE receiving a showcause notice from the Jawaharlal Nehru administration last year, All India Backward Students' Organisation (AIBSF) will be observing 'Mahishasur's Martyrdom Day' on October 29.

The event had last year led to a clash between students organisations on the JNU campus. Following this, a police case had been registered and a showcause notice was issued to AIBSF president Jeetendra Yadav.

Last year's incidents, however, have not acted as a deterrent for AIBSF. "We have pasted posters about the event all over the campus. Students from Lucknow University, Bhimrao Ambedkar University and Patna University will also join us," Yadav said.

Elaborating on the belief behind the 'Mahishasur's Martyrdom Day', Yadav said, "Mahishasur was a powerful ruler who led the working ... — who are known as gods in mythology — came to the region with their intention of controlling it as it was very fertile, a battle ensued. Mahishasur said he would not kill animals or hurt women. Taking advantage of his benevolent nature, the suras sent Durga to slay him. Durga is called "shakti avatar" as she was able to do what the "Gods" could not." The Asura community of Jharkhand believe in this myth, he said.

The posters put up by AIBSF include a copy of the former Jharkhand Chief Minister Shibu Soren's interview in which he talks about the Asura community in Jharkhand and the efforts of his government to uplift them.

While the AIBSF members alleged that there was tension on campus because of the observance of Mahishasur's Martyrdom Day, some "rightist political elements" tearing their posters.

"We are not going to do anything about this. We have informed the administration about the ... it is up to them to look into ..." Sandeep, general secretary ...

JNU notice to student leader for 'offensive' Durga Puja posters

EXPRESS NEWS SERVICE

... accused AIBSF of using derogatory ... they are being targeted

दैनिक जागरण | 5

नोटिस के बदले में नोटिस देने की तैयारी

जेएनयू पोस्टर प्रकरण

महिषासुर यादव वंश के राजा थे

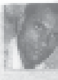

सहारा | 5

नई दिल्ली, सोमवार • 23 अक्तूबर •

जेएनयू : महिषासुर शहादत दिवस मनाने की तैयारी

सहारा 5

प्रशासन और छात्र संगठन आमने सामने

प्रॉक्टोरियल जांच बंद, मांगी माफी

सहारा 5

प्रॉक्टर के खिलाफ एकजुट हुए छात्र, शक्ति प्रदर्शन आज

Students from various states mark Mahishasur Day at JNU

EXPRESS NEWS SERVICE
NEW DELHI, OCTOBER 29

MEMBERS of the All India Backward Students' Federation (AIBSF) observed Mahishasur martyrdom day on the Jawaharlal Nehru University campus on Monday evening.

Students from other states, including those from Bhim Rao Ambedkar University, Bihar, and Lucknow University participated.

The programme saw a discussion on the legend behind Mahishasur, the demon king who was slain by Goddess Durga.

Last year, the event had caused a furore on campus and ended in a clash between members of the Akhil Bharatiya Vidyarthi Parishad (ABVP). A case was also registered and a show-cause notice was issued to AIBSF president Jeetendra Yadav.

Members of the AIBSF alleged that some of the posters relating to the event was torn this year on the campus. However, ABVP members denied any hand in this.

Last year, the event had caused a furore on campus and ended in a clash between members of the Akhil Bharatiya Vidyarthi Parishad (ABVP) and AIBSF

"The aim behind observing the day is to attract attention. It is just a handful of students who are organising the event. It is up to the administration to look into the issue. Moreover, there is space for everyone to hold meetings and discuss their views on this campus," Sandeep, an ABVP member, said.

AIBSF president Jeetendra Yadav said unlike the "common" belief that paints Mahishasur as a demon king, symbolising evil, the Asur community in Jharkhand looked at him in a different light. They believe that Mahishasur was a kind and benevolent ruler of the region, which is now a part of Bihar, Jharkhand, Orissa and West Bengal.

"When "outsiders" came to the region, they tried to conquer it because of the fertility of the soil. Mahishasur's forces, however, put up a fight and he could not be defeated. Seeing this and taking advantage of Mahishasur's resolution that he will not kill animals or harm women, the sura or gods sent Durga who slayed him. Durga is called "shakti" because by killing Mahishasur she did something which the gods were unable to do," Yadav said.

Fight for Mahishasura on JNU campus

छात्र नेता जितेंद्र यादव को दंडि
किए जाने का मामला गरमाया

आंदोलन अनुचित- प्रमोद

नई दिल्ली, 22 अक्टूबर 2012 **दैनिक जागरण**

www.jagran.com

जेएनयू में मनेगा 29 को महिषासुर शहादत दिवस

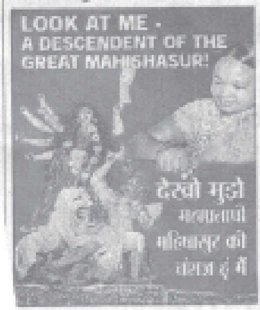

जेएनयू में महिषासुर शहादत दिवस आयोजन के उपलक्ष्य में लगा पोस्टर।

जागरण संवाददाता, नई दिल्ली : जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) फिर से विवादों में है। इस बार ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम (एआइबीएसएफ) ने महिषासुर शहादत दिवस मनाने की घोषणा की है। यह आयोजन 29 अक्टूबर को होगा। पोस्टर भी कैंपस में लगाए गए हैं।

महिषासुर को बैकवर्ड समाज का नायक व आर्यों ने मां दुर्गा के माध्यम से उसकी हत्या करना दर्शाया है। पोस्टर में झारखंड की कवियत्री सुषमा का फोटो यह कहते हुए दर्शाया गया है कि 'देखो मुझे महा प्रतापी महिषासुर की वंशज हूं मैं'। संगठन के अध्यक्ष जितेंद्र यादव ने कहा कि विजय दशमी को राष्ट्रीय शर्म दिन के रूप में घोषित करने के लिए वे आंदोलन चलाएंगे, क्योंकि यह पर्व उनके पूर्वजों की हत्याओं का जश्न है। जितेंद्र ने कहा कि राजा महिषासुर की हत्या के बाद पूर्णिमा की रात में असुरों ने शोक सभा की थी। इसलिए, संगठन शरद पूर्णिमा को शहादत दिवस के रूप में मनाएगा।

जेएनयू दुनिया

महिषासुर शहादत दिवस को लेकर जेएनयू हुआ गर्म

- एआईबीएसएफ के पोस्टर फाड़े गए
- 29 अक्टूबर को मनाएंगे शहादत दिवस

कार्यालय संवाददाता

Student body chief responds to JNU show cause with legal notice

FORWARD Press also defended its article, Kiski Puja Kar Rahe Hai Bahujan?, stating that the allegations are unfounded

the pioneer

NEW DELHI | FRIDAY | OCTOBER 28, 2011

Student to sue JNU for 'offensive poster' claim

STAFF REPORTER ■ NEW DELHI

'Backward' students mark 2nd Mahishasur Diwas

THE TRIBUNE, NEW DELHI, THURSDAY, OCTOBER 25, 2012

Mahishasur day row

AIBSF complains about torn posters on JNU campus

अमर उजाला | 22 अक्तूबर 2012

29 को मनेगा महिषासुर शहादत दिवस

जेएनयू छात्रसंघ का आज विरोध प्रदर्शन

महिषासुर के नाम से शुरू हुआ यह आंदोलन क्या है? इसकी आवश्यकता क्या है? इसके निहितार्थ क्या हैं? ये कुछ सवाल हैं, जो बाहर से हमारी तरफ उछाले जाएंगे. लेकिन इसी कड़ी में एक बेहद महत्वपूर्ण सवाल होगा, जो हमें खुद से पूछना होगा कि हम इस आंदोलन को किस दृष्टिकोण से देखें? यानी, सबसे महत्वपूर्ण यह है कि हम एक मिथकीय नायक पर कहां खड़े होकर नजर डाल रहे हैं. एक महान सांस्कृतिक युद्ध में छलांग लगाने से पूर्व हमें अपने लांचिंग पैड की जांच ठीक तरह से कर लेनी चाहिए. हमारे पास जोतिबा फूले, डॉ आम्बेडकर और रामास्वामी पेरियार की तेजस्वी परंपरा है, जिसने आधुनिक काल में मिथकों के वैज्ञानिक अध्ययन की जमीन तैयार की है. महिषासुर को अपना नायक घोषित करने वाले इस आंदोलन को भी खुद को इसी परंपरा से जोड़ना होगा. जाहिर है, किसी भी प्रकार के धार्मिक कर्मकांड से तो इसे दूर रखना ही होगा, साथ ही मार्क्सवादी प्रविधियां भी इस आंदोलन में काम न आएंगी. न सिर्फ सिद्धांत के स्तर पर बल्कि ठोस, जमीनी स्तर पर भी इस आंदोलन को कर्मकांडियों और मार्क्सवादियों के लिए, समान रूप से, अपने दरवाजे कड़ाई से बंद करने होंगे. आंदोलन जैसे-जैसे गति पकड़ता जाएगा, ये दोनों ही चोर दरवाजों से इसमें प्रवेश के लिए उत्सुक होंगे.

–प्रमोद रंजन

janvikalp@gmail.com
मो. 9811884495

प्रकाशक :
बलिजन कल्चरल मूवमेंट,
पी-22, साउथ एक्स-II,
नई दिल्ली-49
फोन : 011-26250778

किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन ?